अध्याय - चौथा

नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में नारी जीवन की कुछ अन्य समस्याएँ।

प्रारंभ से ही नारी ने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को अपनी दया, माया, ममता, मधुरिमा, अगाध विश्वास तथा समर्पण से अभिषिक्त किया है। आत्मोत्सर्ग के लिए प्रेरणा दी है। इसी कारण भारतीय समाज में नारी की स्थिति युगीन आदर्शों और जीवन मूल्यों के साथ-साथ परिवर्तित होती गयी है।

स्त्री - पुरुष के जीवन में कामतृप्ति एक महत्वपूर्ण प्रवृत्ति है, जो व्यक्ति के जीवन में शक्ति और संतुलन स्थापित करती है। वही स्त्री और पुरुष के सहज सुलभ आकर्षण और सृजन का कारण रही है। मातृत्व की पीडा में सुख - आनंद मानकर नारी ने मानव का सृजन किया है। इसी कामना के कारण नारी त्याग और सेवा की प्रतीक बन गई है। इसलिए राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त सम्मान के साथ नारी संबंधी कहते हैं ......

" अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी,
आँचल में है दुध और आँखों में पानी। "

वास्तव में नारी देवता का रूप है। जिसका सम्मान और गौरव होना चाहिए। परंतु दुर्भाग्य से हमारे समाज में नारी पुरुष द्वारा शोषित, प्रताडित एवं उपेक्षित रही है। इस संदर्भ डॉ. कलावती प्रकाश कहती है ......

" जहाँ नारी पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं - इस उक्ति को झूठलाकर भारत का पुरुष समाज नारी का स्थान ढोल, गँवार, शूद्र व पशु के समकक्ष मान उसे अपनी पाशाविकता का शिकार बनाता है। " १

मध्य युगीन धर्म शास्त्रियों ने स्त्रियों को अबला मानकर उन्हे अत्याचारों का शिकार बनाया है। उन्हें अपने अधिकारों से वंचित रखा है। "देवी", "पतिव्रता", "गृहलक्ष्मी", जैसी ऊँची पदवियों से विभूषित करते हुए अपना स्वार्थ सिध्द किया है। इस संदर्भ में डॉ. कमल गुप्ता का कथन है ----

" पुरुष नारी को देवी, लक्ष्मी जैसे विशेषणों से विभूषित कर उसे पुष्पों की बेडियाँ पहनादी, जिससे वह कभी उन्नती के मार्ग पर बढने की सोच भी न सके और वह पुरुष की दासी उसीकी बनी रहे। " २

जिस नारी ने पुरुष के लिए आत्मसमर्पण किया, वह पुरुष की भोग्य मात्र रही है। नारी सदैव पुरुष व्दारा पीडित और उसकी भोग-विलास की सामग्री रही है। अपनी भोग्या के प्रति पुरुष सदैव से दायित्वहीन रहा है। पुरुषोंदारा किए गए अनाचार और दुराचार के लिए यह सुविधा प्राप्त नहीं है। इस स्थिती के संदर्भ में डॉ. प्रीति प्रभा गोयल कहती है -

---

१. डॉ. कलावती प्रकाश - महासमरोत्तर हिंदी उपन्यासों में जीवन दर्शन -पृ. ५५, श्याम प्रकाशन, जयपुर-३, प्रथम संस्करण - १९८७,

२. डॉ. कमल गुप्ता - हिंदी उपन्यासों में सामन्तवाद - पृ. २९५, अभिनव प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९७९.

" भारतीय संस्कृति में पुरुष का स्थान समाज में सदैव ऊँचा रहा, किन्तु पारिवारिक दृष्टि से स्त्री भी पुरुष से रंचमात्र कम नहीं है। पति यदि पूजनीय है तो पत्नी भी आदरार्ह है। वे मूर्खजन है जो पति और पत्नी में भेद करते हैं। " १

धर्म मार्तंडों के विधि विधान और पुरुष प्रधानता के कारण ही युगोंयुगों से नारी का शोषण विविध रूपों में हुआ है। कहीं नारी पुरुष की क्षुधाशांती का साधन है, तो कहीं उसके राजनैतिक उद्देश्यपूर्ति का साधन, तो कहीं साधना या मुक्ति के मार्ग की बाधा - कुछ भी हो शोषण के रूप पृथक-पृथक होते हुए भी मूलभाव एक ही है - नारी साधन है साध्य नहीं। भारतीय समाज में चाहे हिंदु हो या मुस्लीम - नारी की स्थिति अत्यंत दयनीय रही है। पुरुष प्रधान संस्कृति में नारी संबंधी अमानुष व्यवहार एवं अमानवीय रीतियों को भी धर्म की स्वीकृती प्राप्त हो गयी थी। अन्तत: इसका परिणाम यह हुआ कि पुरुष को अनेक विवाह करने की छुट मिल गयी, और नारी के लिए पातिव्रत्य धर्म की परीक्षा के लिए "सतीप्रथा"।

जिससे भारतीय समाज में नारी वर्ग ही सर्वाधिक पीडित रहा, अछूत वर्ग से भी अधिक अछूत सामाजिक व्यवहार में घृणा का पात्र रहा।

शताब्दियों से उपेक्षित और प्रताडित नारी को प्रेमचंद के समान ही नागार्जुन ने भी अपनी औपन्यासिक कृतियों में सहानुभूति प्रदान की है। नारी की स्थिती में परिवर्तन करने की आवश्यकता

---

१. डॉ. प्रीति प्रभा गोयल - हिंदु विवाह मिमांसा - पृ.१९७-१९८, राजस्थानी ग्रंथागार, जोधपुर, संस्करण-१९८०.

प्रतिपादित की है। नागार्जुन का प्रेरणा स्थल बिहार का मिथिला जनपद रहा है, जो पिछडा हुआ क्षेत्र है, जहाँ सामाजिक और धार्मिक, पारंपारिकता, रुढीवादिता, दांभिकता तथा अज्ञान के कारण नारी जीवन विवाह की कुप्रथाओं से निर्मित नारी विक्रय एवं कुलीनता, वैधव्य का कष्टमय एवं दयनीय जीवन, अत्याचार और बलात्कार तथा वेश्या बनने तक की सभी समस्याओं से पीडित रहा है। इन प्रताडित एवं पीडीत नारियों के जीवन को देखकर नागार्जुन के संवेदनशील मन ने अपनी कलम को नारी उध्दार के लिए परिचालित किया है। उन्होंने मुख्यत: दो प्रकार की नारियोंका चित्रण किया है – एक, जो विधवा नारियाँ है, जो समाज-द्वारा पीडीत है और दूसरी, जो सधवा होकर भी पीडीत है। साथही समाज के अत्याचारों के विरुध्द लडनेवाली तथा अत्याचारों के खिलाफ डटकर अपना जीवन नये सिरे से बसानेवाली नारियों का भी चित्रण किया है।

[अ] विधवा समस्या –

भारतीय नारी के लिए वैधव्य एक भारी अभिशाप है। धर्म और शास्त्रानुसार हिंदु नारी को एक बार ही विवाह करने का अधिकार मान्य होने के कारण उसे वैधव्य जीवन में कठोर संयम का पालन करना अनिवार्य माना गया है। नारी का वैधव्य उसके पूर्व जन्म के पाप का फल है, तथा विधवाएँ अशुभ और अपशकुनी भी मानी जाती है। जिससे वह धर्म कार्य तथा शुभ कार्य में उपस्थित नहीं रह सकती। इस संदर्भ में बाबूराम गुप्त ने कहा है –

" विधवा जीवन के प्रति समाज का दृष्टिकोण परंपरावादी,

दकियानुसी और अपमाननापूर्ण रहा है। चाहे समाज प्रत्यक्ष में उसे दीन-हीन, कष्टपूर्ण जीवन के लिए मौखिक सहानुभूति प्रदर्शित करे, लेकिन परोक्ष में क्रूर व्यंग्य और प्रताडना ही उसके जीवन को और अधिक त्रासद बना देते है। " १

जिससे हिंदु विधवा के जीवन में सुख के क्षण की भी कल्पना नहीं की जा सकती, वह एक ठूंठ की तरह होती है, जिसपर कभी हरियाली नहीं आती, कभी फलफुल नहीं लगते और उसका अस्तित्व धरती का बोझ हो जाता है। ऐसी एकाकी असहाय विधवा के लिए मान सम्मान पूर्ण जीवन जीना प्राप्त नहीं होता। उसपर उठने-बैठने, बात करने, सोने और जागने तक की सभी बातों पर कडी निगरानी रखी जाती है और सदैव संदेह और शंका की दृष्टि से देखा जाता है। इसपर डॉ. कमल गुप्ता का कहना है -

" विधवा जीवन के प्रति समाजकी दृष्टि सदैव ही परम्परावादी रही एवं विधवा को समाज से अवमानता और प्रतारणाही मिलती रही। समाज कभी भी उसके स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं कर सका। " २

कम उम्र में वैधव्य प्राप्त नारियों को अपने नाते रिश्तेदारों के आश्रय में ही रहना पडता है। यदि रिश्तेदार नेकचलन होते हैं तो उस नारी को विशेष कष्ट नहीं होता, परंतु जब परिवार के व्यक्तियों की सहानुभूति और संवेदना पाने के स्थान पर विधवा नारी दुर्व्यवहार पाती

---

१. बाबूराम गुप्त - उपन्यासकार नागार्जुन - पृ.७८, श्याम प्रकाशन, जयपुर - ३, प्रथम संस्करण - १९८५.

२. डॉ. कमल गुप्ता- हिंदी उपन्यासों में सामन्तवाद - पृ.३८३, अभिनव प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९७९.

है तब निरुपाय अवस्था में उसे मार्ग भटकनापडता है। वह स्वयं व्याभिचारिणी नहीं बनना चाहती परंतु दुर्व्यवहारों के कारण समाज ही उसे बाध्य बनाता है।

विधवाओं की समस्याओं को लेकर ईश्वरचंद्र विद्यासागर ने बंगाल में तथा जस्टिस रानडे और नटराज ने बंबई में विधवा विवाह के प्रश्न को उठाया था। इन्हीं समाज सुधारकों के प्रयत्नों के कारण विधवा विवाह जायज माना गया है। परंतु भारतीय समाज प्राचीन परंपराओं, रुढियों को तोडने में असमर्थ रहा है जिससे आज भी, हम सभ्यता के क्षेत्र में प्रगतिशील मानते हुए भी समाज में विधवा का जीवन दयनीय रूप में देख सकते हैं। ग्रामीण समाजमें इन विचारों की संकीर्णता और भी गहन रही है।

नागार्जुन ने बिहार के मैथिल जनपद के रुढीवादी समाज में विधवाओं के यातनापूर्ण जीवन को निकटता से देखा है। उन विधवाओं के चीत्कार और क्रंदन ने उनके संवेदनशील कलाकार को झकझोर दिया है। इसलिए उन्होंने अपने उपन्यासों में अत्यधिक आत्मीयता और मार्मिकता से विधवा जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए समाज की सामुहिक असमानता और मानसिक यातनाओं को सहन करनेवाली संघर्षशील और कर्तव्यरत विधवाओं के लिए वाणी प्रदान की है। उन्होंने १९४८ में प्रकाशित 'रतिनाथ की चाची' इस उपन्यास में समाज की विषमता, स्वार्थपरता और उत्पिडनसे प्रताडित विधवा जीवन का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। –

<u>रतिनाथ की चाची –</u>

इस उपन्यास की नायिका "गौरी" तरकुलवा गाँव के सधन ब्राम्हण

की बेटी है, उसका बचपन माँ-बाप की छाया में सुख चैन में बीत जाता है। जब वह चौदह साल की हो जाती है तब उसकी शादी शुंभकरपुर के " वैद्यनाथ झा " से की जाती है। वैद्यनाथ झा कुलीनता की दृष्टि से श्रेष्ठ तो था लेकिन वह तो दमे का रोगी और सुस्त प्रकृति का व्यक्ति था, शतरंज का तो इतना शौकीन था कि दस-दस घण्टों तक शतरंज खेलता रहता था। ससुराल आता तो बीस-बीस दिन तक पडे रहता। कमाकर कुछ भी नहीं लाता था। शुंभकरपुर में तीन बीघा और उत्तर भागलपुर में चार बीघा उसकी जमीन थी। ननिहाल में कोई न होने के कारण नाना से भी कुछ जायदाद और जवाहिर उसे प्राप्त हुआ था। लेकिन यह महाशय इतने सुस्त थे कि अपनी जिन्दगी सुख चैन में गुजारने के लिए और गृहस्थी चलाने के लिए नाना से प्राप्त संपति समाप्त हो जाने के बाद शुंभकरपुर के खेत बेंच-बेंचकर खा गए थे, डेढ-दो बीघे रामगंज में भी रेहन रख दिया था। और एक दिन उसकी दमें की दीर्घ बीमारी के कारण एक कवाँरी लडकी और एक अबोध शिशु को गौरी के मत्थे ठोंककर चला जाता है।

गौरी विधवा हो जानेपर बालबच्चों की जिम्मेदारी और गृहस्थी का बोझ ठीक तरह से उससे निभाया नहीं जायेगा यह सोचकर उसका भाई जयकिशोर उसे मायके में ही रहना उचित होगा, इस प्रकार का सुझाव देता है। परंतु वह अत्यंत स्वाभिमानी होने के कारण मायके में रहना उचित नहीं समझती। इस पर वह अपनी माँ से कहती है -

" बाबू [पिता] ने कुश-तिल-जल लेकर मुझे दान कर दिया है, फिर मेरा इस घरमें रहना अनुचित नहीं होगा, माँ ? विवाहिता के लिए पितृकुल का अमृत भी पतिकुल के माँड या पीने के साधारण जल की तुलना

में तुच्छ है।" १

इसी स्वाभिमान से वह पतिगृह में रहने लगती है। घरमें उसके दो बच्चे, विधुर देवर और उसका एक पुत्र आदि रहते हैं। इन सब की खान-पान की व्यवस्था में और गृहस्थी के कामों में गौरी दिनभर कष्ट करते हुए रहने लगती है। जब उसकी बेटी प्रतिभामा सत्रह वर्ष की हो जाती है तब अपनी निर्धनता के कारण मजबुर होकर भागलपुर के एक कुल की दृष्टि से हीन अधेड़ ब्राम्हण से सात सौ रुपये लेकर भोला पंडित की मदद से बेटी की शादी करा देती है। बाद में पुत्र उमानाथ शिक्षा लेने के लिए अपनी बहन के पास चला जाता है। जिससे घर में केवल रतिनाथ और उसका पिता जयनाथ ही रह जाते हैं। गौरी अपने देवर जयनाथ के प्रति सतर्क रहकर सेवा करती है। वह उसके साथ एक समझदार माँ की भाँति व्यवहार करती रहती है, और देखभाल करती है। साथ ही मातृ-विहीन रतिनाथ को माँ की ममता से पोसती है। परंतु जयनाथ अपनी भाभी के निकट संपर्क के कारण उत्तेजित होने लगता है और एक दिन वह गौरी को अपनी वासना की शिकार बना लेता है। जिससे गौरी गर्भवती हो जाती है, और यहीं से गौरी के दु:खमय जीवन की तीव्रता गहन हो जाती है। गौरी की खबर गली की महिलाओं में कानाफुसी के साथ प्रसारित हो जाती है। जिससे उसे कटोक्तियाँ सुनने मिलती है। वह कहीं मुँह दिखाने के लायक नहीं रह जाती। वास्तव में नारी जाति के लिए नारी जितनी कठोर होती है उतना पुरुष भी नहीं हो सकता। क्यों कि गौरी की खबर प्रसारित होते ही गली की कुटनीतिज्ञ नारियों की प्रमुख दमयंती [दम्मो फूफी], जो बालविधवा है और रंगरलियों से युक्त भरपूर जीवन भी जी चुकी है। वह अपनी सखियों की सहायता से गौरी को समाज

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची, पृ.२६, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

से बहिष्कृत मान कर ताने कसने लगती हैं -

" उमानाथ की माँ व्याभिचारिणी है, पतित है, भ्रष्ट है, कुलटा है, छिनाल है, उससे हमें किसी प्रकार का संबंध नाहीं रखना चाहिए। बोलचाल बंद। बात - विचार बंद। प्रत्येक विचार बंद। हाँ, जयनाथ और रतिनाथ दोनों बापपूत यदि प्रायश्चित कर ले तो इस समाज में उनके लिए स्थान हो सकता हैं, परंतु उमानाथ की माँ को समाज किसी भी हालत में क्षमा नहीं कर सकता।--" १

इस बहिष्कार के कारण उसे कुएँ पर पानी भी भरने नहीं देते, ना चुल्हा सुलगाने के लिए आग देते हैं। इसके साथ ही उन स्त्रियों की कटूक्तियों की नोच भी गौरी को आहत बना देती है, जिससे वह लाँछित जीवन जीने के लिए मजबुर हो जाती है। इस विपद स्थिति में उसे कोई मदद नहीं करता। जयनाथ भी चार महिनों से घर से ला पता हो जाता है। इस दिग्मुढ अवस्था में वह गर्भपात का विचार करने लगती है। इस कार्य के लिए वह अपनी माँ की शरण में तरकुलवा गाँव जाती है। गौरी की हालत देखकर उसकी माँ झल्ला उठती है, परंतु उसका मातृ हृदय उसे विव्हल बना देता है। इसलिए वह लोक-लाज की परवाह न करते हुए गौरी से कहती है -

" कोई क्या कर लेगा हमारा ? ------ बिटिया को मैं प्याज की तरह जमीन के अंदर दबाकर नहीं रख सकती ---- जिस समाज में हजारों की तदाद में जवान विधवाएँ रहेंगी, वहाँ यही सब होगा। "---२

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ. ६०-६१, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

२. ----- वहीं ------ पृ. २८.

गौरी की माँ बुधना चमार की औरत को भैंस देखने के बहाने घर बुलाती है। यह चमारीन पुतली और पेट गिराने के कार्य में निपुण है। इसलिए उसे पचीस रुपये देकर गौरी का पेट साफ करवा लेती है। इसपर बुधना चमार की औरत को रहा नहीं जाता वह बडी जातवालों पर व्यंग्य कसते हुए कहती है -

" बडी जातवालों की तुम्हारी यह बिरादरी बडी मलिच्छ है, बडी निठूर होती है मालिकाइन। हमारी भी बहु-बिटिया राँड हो जाती है, पर हमारी बिरादरी में किसी के पेट से आठ-आठ नौ-नौ, महिने का बच्चा निकालकर जंगल में फेंकने का रीवाज नहीं है। १

गर्भपात के बाद गौरी की तंदुरुस्ती के लिए उसे अच्छा खिलाया-पिलाया जाता है। गौरी की माँ समाज में धनिक होनेके कारण इस कुकांडपर कोई खुलकर बात नहीं करता परंतु गर्भपात के ग्यारहवे दिन जब सत्यनारायण की पूजा की जाती है तब केवल पाँच-सात लोगही आ जाते हैं। इससे गौरी की माँ दु:खी हो जाती है। उसी दिन गौरी भी अपने पतिगृह में चली जाती है।

जब वह ससुराल आती है तब फिर गली की स्त्रियाँ सामाजिक बहिष्कार जारी रखती है, उससे कोई संबंध नहीं रखता। उसे " पापी " और " कलंकिता " कहकर दूषण दिए जाता है। यहाँ तक कि उसके कारण गाँव भ्रष्ट हो गया है ऐसा समझने लगते हैं। गौरी अपना अपमानित और प्रताडित जीवन चुपचाप सहती रहती है। इस स्थिति में केवल रतिनाथ ही उसका एक मात्र सहारा था, जो उसकी सभी भावनाएँ और यातनाएँ समझकर उसके साथ स्नेहल संबंध रख सकता है।

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ. २४, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

दीपावली के दिन गौरी के पति का श्राध्द रहता है। इसलिए उसका पुत्र उमानाथ, जो शिक्षा में अरुचि होनेके कारण पैसे कमाने के लिए कलकता गया है, वह आ जाता है। गाँवमें आते ही रास्ते में दम्मो फुफी उसे बुलाती है और दु:खद चेहरा बनाकर हमदर्दी दिखाते हुए उसे उसकी माँ की पाप-कर्म कहानी सुनाती है कि जिससे वह घर में आतेही माँ की स्नेहल पुछताछ पर कुछ उत्तर न देते हुए झटसे माँ का झोंटा पकड लेता है और पीठ में लात लगवाना शुरु कर देता है। उसे व्याभिचारिणी, कुलटा, राक्षसी, कुतिया कहकर ऐसा अपमानित कर देता कि वह पुत्र की गालियाँ जीवन भर याद करे। गौरी अपने पुत्र के कार्य से दम्मो फुफी की करतुत को समझ लेती है, फिर भी असहाय होकर पुत्र के पैर पकड लेती है और गिडगिडाते हुए कहती है -

" ---- मैं तुम्हारी माँ हूँ उमानाथ। क्या मैं कुतिया से भी बदतर हूँ ---- " १

" ---- नहीं भैया, कोने में कुल्हाडा रखा है, उठा लाओ, मुझे खण्ड - खण्ड कर दो। मैं खुद इसलिए नहीं डुब मरी कि तुम्हारे हाथों से सद्गति मिलेगी तो मेरे सारे कुकर्म धूल जाऐंगे। ---- " २

श्राध्द के भोजन के लिए प्रतिवर्ष पाँच दस ब्राम्हणों को निमंत्रित किया जाता है। उसी के अनुसार इस साल भी उमानाथ निमंत्रण देता है परंतु भोजन के लिए कोई नहीं आता क्यों कि पापीन के घर का भोजन स्वीकारने से धर्म भ्रष्ट हो जाएगा ऐसी गाँव के ब्राम्हणों की धारणा थी।

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.१३३, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

२. ----- वहीं ----- पृ. ७१-७२.

प्रतिवर्ष दीपावली में गौरी का भाई जय किशोर भाई-दूज के लिए आता था। परंतु गौरी के कुकांड को समझ जाने के कारण वह भी नहीं आता।

गौरी के संबंध में उठा बवंडर धीरे-धीरे शांत हो जाता है। परंतु इससे गौरी का दुःख समाप्त नहीं हो जाता, केवल उसकी तीव्रता कुछ मात्रा में क्षीण हो जाती है। उमानाथ भी कलकत्ता वापस जाता है। धीरे-धीरे गली की स्त्रियाँ एक-एक करके बोलना प्रारंभ कर देती है। लेन-देन शुरु हो जाता है। परंतु निर्वाह के लिए उमानाथ कलकते से जो दस-पाँच रुपये भेज दिया करता था वह बंद हो जाता है। इसलिए गौरी ताराचरण नामके एक युवक की सहायता से चर्खा प्राप्त कर लेती है और उसपर सूत कातना प्रारंभ कर देती है। दिन में आठ-दस घण्टों तक लगातार काम करने लगती है। इस कडी मेहनत से उसे हर मास बीस-पचीस तक की आमदनी मिलने लगती है। इन पैसों में वह अपना निर्वाह चलाती है। कभी कभी तारचरण के ग्राम विकास कार्य, युध्द मदद कार्य तथा मलेरिया से पीडितों के राहत कार्य के लिए एक-दो रुपया देते हुए कहा करती है -

" यह दस का काम है। देश का काम है। गरिबों का यज्ञ है। --- मेरे पास और है ही क्या, जो दूँगी। " १

ऐसे कार्य और निर्वाह से बचे हुए पैसे वह गाँठ बाँधना शुरु कर देती है। उसके मनमें पुत्रवधु का मुख देखने की इच्छा निर्माण हो जाती है। इसलिए वह अपनी आमदनी से बर्तन, दरी-चादर आदि खरीद कर रख देती है। पुत्र विवाह की कल्पना से पुलकित होने लगती है। वह उमानाथ की इजाजत से अपने भाई जय किशोर और पडोसी जयदेव की सहायता से महनौली के नंद

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.८५, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

झा की पुत्री कमलमुखी के साथ उसका विवाह करा देती है। गौरी अत्यानंदित हो जाती है परंतु उसका यह आनंद पानीके बुदबुदे के समान क्षणजीवी रहता है। विवाह के बाद कमलमुखी अपने पति के प्रेम के कारण उसके इशारेपर चलने लगती है। उमानाथ भी अपनी माँ से तिरस्कृत व्यवहार करता रहता है। यह देखकर कमलमुखी भी अपनी सास से रुक्ष व्यवहार करने लगती है। इस कार्य में दम्मो फूफी और रामपुरवाली चाची भी कमलमुखी को उसकी सास की पाप कहानी बढा-बढाकर सुनाकर बढावा देती है। जिससे कमलमुखी गौरी का बातबात पर अवमान करते हुए कटोक्तिपूर्ण बर्ताव करना शुरु कर देती है। जिससे गौरी अपने ही घरमें रहकर परायी हो जाती है। इसपर उमानाथ के कहने के अनुसार गौरी का चर्खा चलाना भी बंद हो जाता है। इस अपमानित और प्रताडित स्थिति के कारण वह मन ही मन टूटती जाती है। उसका एक मात्र सहारा रतिनाथ भी शिक्षा लेने के लिए उसके मामा के साथ मोतिहारी गाँव चला जाता है। इस असहाय स्थिति में गौरी मृत्यू की प्रतिक्षा करना ही उचित मानती है। और समय पर खाना-सोना छोड देती है। घण्टों तक अपने आप में खोयी हुई रहने लगती है। इस अभावात्मक स्थिति में वह भगवान की प्रार्थना करती है -

" मनुष्य होकर जन्म लेना अच्छा नहीं है। हे भगवान् अगले जन्म भले ही मैं चुहिया होऊं, भलेही नेवला, मगर चेतनामय इस मानव समाजमें कभी न पैदा होऊँ। --- " १

ऐसी दयनीय स्थिति में वह केवल रतिनाथ की स्मृति पर जीती है। वह उमानाथ को मन से पुत्र नहीं मानती, केवल रतिनाथ को ही अपना पुत्र समझती है। इसलिए अंतमें उसके हाथों से गंगाजलस्वीकारना चाहती है। इस दिल की बीमारी से एक साल में वह इतनी त्रस्त और कमजोर हो जाती है।

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.१३३, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली -२, प्रथम संस्करण - १९८५.

इसी अवस्थामें हैजे की बीमारी फैल जाती है गौरी भी इस बीमारी की शिकार हो जाती है। उसका पेशाब और पाखाना छत्तीस घण्टोंतक रुक जाता है, इससे वह अत्यंत संत्रस्त हो जाती है। केवल मृत्यु के क्षण की राह देखती है, परंतु बार बार रतिनाथ को याद करती है। संयोगवश रतिनाथ अपनी चाची [गौरी] को देखने के लिए आ जाता है। उसकी स्थिति देखकर उसे अस्पताल ले जाना चाहता है। वैद्य को बुलाने का प्रयास भी करता है परंतु चाची उसके प्रयत्न को स्वीकारना नहीं चाहती। उसे पास बैठने का इशारा कर देती है। उसे देखकर सुख-दु:ख मिश्रित भाव चेहरे से प्रकट करते हुए उसे मुख में गंगाजल छोडने का संकेत करती है। रतिनाथ उसके मुख में गंगाजल छोडते ही वह प्राणोत्क्रमण कर देती है।

गौरी के इस वैधव्य पूर्ण जीवन को देखने पर हृदय विव्हल हो जाता है। सामाजिक प्रताडना, अवमान और उत्पीडन के कारण ही गौरी दयनीय जीवन जीती है। विधवा जीवन संबंधी जितना यथार्थ और मर्मस्पर्शी चित्रण " रतिनाथ की चाची " इस उपन्यास में उपन्यासकार ने किया है उतना हिंदी के अन्य किसी उपन्यास में पाना दुर्लभ है।

[ब] <u>वेश्या समस्या</u> -

" वेश्या " शब्द का अभिप्राय उन स्त्रियों से हैं जिनको पैसे देकर स्वच्छन्दतापूर्वक कोई भी व्यक्ति भोग सकता है। या, अपने सौंदर्य, यौवन और कला-कौशल केबलपर अपना शरीर बेचकर धन कमानेवाली स्त्री को वेश्या कहा जाता है।

भारतीय समाज में वेश्या की सत्तामहत्ता प्राचीन काल से ही रही है। ऋग्वेद, धर्म सूत्रों और स्मृतिग्रंथों, पुराणों में वेश्याओं के विषयों पर

पर्याप्त विवेचन उपलब्ध है। केवल भारतमें ही नहीं, विश्व के अन्य भागों में भी अत्यंत प्राचीन कालसे ही इस प्रवृत्ति का प्रचलन मिलता है।

वेश्यावृत्ति की उत्पत्ति एवं विकास के मूल में अनेक कारण रहे हैं। मध्यकाल में वेश्यावृत्ति अपने समुन्नत स्वरूपमें परिलक्षित होती है। तत्कालीन सामन्तों एवं राजाओं ने अपनी कामवासनाओं की पूर्ति के लिए विविध प्रकारों का शोषण किया। इस संदर्भ में डॉ. कलावती प्रकाशने कहा है -

" सामान्ती समाज में ऐसे घटनाएँ आये दिन देखने को मिलती थी जबकि राजा रइसों के एजण्टों व गुण्डों के चंगुल में फँसकर कलंकित होनेवाली कुमारी कन्याओं अथवा युवती स्त्रियों को वेश्या बनाने के लिए विवश होना पडता था। " १

बालविवाह के परिणाम स्वरूप भी वेश्यावृत्ति को बढावा मिला है। बाल्यावस्था में ही विधवा हो जाने के कारण संयमित जीवन बिताने में असमर्थ होकर बहुतसी बाल विधवाएँ वेश्या बनने के लिए मजबूर हो जाती है। अनेक बार विवाह की कुप्रथाओं से निर्मित परिस्थितियों से विवश विधवा स्त्रियाँ अपने संरक्षकों अथवा परिवार के अन्य सदस्यों के विश्वासघात की शिकार हो जाने के कारण वेश्या का घृणित जीवन अपनाती है। इसपर बाबूराम गुप्त का कहना है -

" वेश्या - समस्या के कारणों में प्रमुख है आवश्यक आर्थिक आधार का न होना, उचित सामाजिक संरक्षण का अभाव, असंगत वैवाहिक पध्दति तथा विभिन्न प्रकार की मनो वैज्ञानिक जटिलताएँ। " २

---

१. डॉ. कलावती प्रकाश - महासमरोत्तर हिंदी उपन्यासों में जीवन दर्शन - पृ. ६६, श्याम प्रकाशन, जयपुर-३, प्रथम संस्करण-१९८७.

२. बाबूराम गुप्त - उपन्यासकार नागार्जुन - पृ. ८१, श्याम प्रकाशन, जयपुर-३, प्रथम संस्करण - १९८५.

इस संदर्भ में डॉ. शीलप्रभा वर्मा का भी कथन है -

" जीवन की विवशताओं के कारण पथभ्रष्ट हो जानेवाली स्त्रियों का समाज में आधिक्य है। किसी भी समाज के लिए यह अत्यंत लज्जा जनक बात है कि, नारी पुरुष के अत्याचारों से पीडित जीवननिर्वाह के लिए शरीर व्यवसाय करे। वेश्यावृत्ति सामाजिक जीवन को विषाक्त बना देती है। " १

साधारणत: यह माना जाता है कि वेश्या कभी सुधार नहीं सकती। क्यों कि वेश्या का जीवन पतीत होता है। वह वासना की पुतली होती है। और उसके कोठे व्याभिचार के प्रमुख अड्डे होते है किंतु धीरे-धीरे इन मान्यताओं का स्थान नई मान्यताएँ ले रही हैं। अब मानवीय दृष्टिसे वेश्या के प्रति विचार किया जा रहा है। वेश्या की आंतरिक भावनाओं का उद्वेलन ममता और सहारे के लिए छटपटाता है। गलित से गलित वेश्या नारी के सामुहिक अचेतन मनमें भी आदर्श नारी के संस्कार संचित रहते हैं, जो अनुकूल परिस्थितीयों मिलनेपर उभर सकते है। उपन्यासकार नागार्जुन ने " रतिनाथ की चाची " और ' कुम्भी पाक ' इन उपन्यासों में वेश्या समस्या काभी चित्रण प्रस्तुत किया है।

रतिनाथ की चाची -

१९४८ में लिखित इस उपन्यास में विधवा जीवन की समस्याओं का चित्रण प्रस्तुत करते हुए ये विधवाएँ अपने ही रिश्तेदारों के दुर्व्यवहारों से तंग आकर किस तरह मजबुरी से वाम मार्ग की ओर मुडती है, इसका यथार्थ चित्रण उपन्यासकार ने प्रस्तुत किया है।

---

१. डॉ. शीलप्रभा वर्मा - महासमरोत्तर हिंदी उपन्यासों में जीवनदर्शन-पृ. २७, श्याम प्रकाशन, जयपुर-३, प्रथम संस्करण - १९८७.

इस उपन्यास की नायिका गौरी का देवर जयनाथ बेतिया की महारानी के साथ पूजा-पाठ और अनुष्ठान करने के लिए प्रयाग जाता है। यह कार्य पूर्ण करने के बाद वह काशी देखने की इच्छा से काशी चला जाता है। वहाँ जाकर तारा मंदिर में रहने लगता है। एक दिन ऐसे ही घूमते-घूमते कुँजगली, ठठरी बाजार से होकर, परिचितों की निगाह से बचते-बचते दलमंडी [जहाँ वेश्या रहती हैं] का चक्कर लगाता है। वहाँ ढुंढपाणि गली में चूडियों की दुकान में दो विधवाओं को मैथिली बोली में मोल-भाव करते हुए देखकर उसे आश्चर्य हो जाता है कि इस गली में मैथील विधवा कैसे ? कुछ देर बाद वे दोनों विधवाएँ मणिकर्णिका घाट के रास्ते से चलते-चलते एक मकान में घुस जाती हैं, यह देखकर पीछे से जयनाथ वहाँ पहुँचकर देखता है - उस मकान पर गेरु से " मैथिल विधवा निवास " - लिखा देखकर मन में सोचने लगता है कि विधवाओं के प्रति इतनी हमदर्दी रखनेवाला कौन होगा ? कि जिसने उनके लिए यह सारी व्यवस्था की है। वह अंदर प्रवेश कर लेता है, तब रास्ते में मिली हुई एक विधवा से पूछताछ करने से पर ज्ञात होता है कि, वह विधवा परसौनी की रहनेवाली है और उसका नाम सुशिला है। यह गाँव जयनाथ के शुभंकरपुर के पडोस में है। सुशिला के आग्रह पर आतिथ्य के लिए कुछ समय बैठ जाता है तब सामने बैठी सुशिला को वह बारीकी से देखने लगता है। वह चौडेपाड की सफेद साडी सिर से ओढकर पहनी थी और गले में चाँदी की तीन साँकल झूल रही थी। उसके भ्रमर कुंचित केश और खुला चेहरा देखकर उसे लगता है कि, यह चेहरा वैधव्य जीवन की खिल्ली उडा रहा है। आतिथ्य के बाद वह जब मगही पान बीडा देती है, तब जयनाथ के मन की आशंका बढने लगती है - विधवा और मगही पान एक साथ कैसे हो सकते है ? साथही सुशिला के संवाद चातुर्य से वह समझ जाता है कि, वह कोई साधरण विधवा नहीं हैं।

तारा मंदिर में काम करनेवाली एक मैथिल विधवा से जयनाथ को सुशिला के बारेमें अधिक जानकारी मिल जाती है कि, सुशिला एक बाल विधवा है और अपने ससुराल में जेठानी और ननद द्वारा की जानेवाली मारपीट और दुर्व्यवहारों से तंग आकर मायके जाती है परंतु वहाँ भी भाभी के बर्ताव से पराया भाव अनुभव करने लगती है। उसके साथ बार बार झगडे होने लगते हैं जिसके के कारण वह एक दिन काशी आ जाती है।

" मैथिल विधवा निवास " चलानेवाला धनिक व्यक्ति भी दरभंगा जिले का ही होने के कारण सुशिला उसकी सहायता से यहीं रहने का निश्चिय कर देती है। वह धनि ऐसा व्यक्ति है कि जिसे तीन विवाहिताएँ और पाँच रखेलियाँ होते हुए भी उसकी अतृप्त नजर सुनी कलाइयों को घुरते रहती है। इस धनिक व्यक्ति के आश्रय में सुशिला अपना जीवनाधार मानकर रहने लगती है। यहाँ रहते हुए वह एक घाटिया महाराज के यहाँ मंदिर के काम करने जाती है। वैसे तो मंदिर का काम केवल दिखावे के लिए होता है, असल में वह वहाँ महाराज को अपना भोग चढाने जाती है। कुछ दिनों के बाद वह महाराज का काम छोड देती है और खत्री नाम के एक दुकानदार के यहाँ उसके मातृविहीन तीन बच्चों की देखभाल करने का काम स्वीकार कर लेती है। जिससे धीरे-धीरे वह खत्री की प्राण वल्लभा बन जाती है। उसका विश्वास पाती है और सभी घरेलु काम सम्हालती है। और कुछ दिनों बाद वह उसके घर की मालकिन बन जाती है और उसे चुस-चुसते हुए धन कमाती रहती है। जब कभी उसके भाई या चाचा उसे मिलने आते है तब उन्हें भी पैसे और चीजें देकर विदा करती है।

सुशिला की जीवन कहानी सुनकर जयनाथ भी मन ही मन उससे आकर्षित हो जाता है। जिससे वह सुशिला से मिलने के लिए बार-बार "मैथिल विधवा निवास" पर जाने लगता है। दोनोंका सम्पर्क बढने लगता है। एक दिन रात में सुशिला उसे सिनेमा दिखाने ले जाती है जिससे जयनाथ उसके

सहवास को चाहने लगता है। इसलिए हररोज शाम के वक्त दोनों घूमने फिरने जाने लगते हैं। ऐसे ही एक दिन वे दोनों पंचगंगा घाट पर बैठे-बैठे इधर उधर की बाते करने लगते हैं। बातोबातो में सुशिला अपनी आपबीती और परिवर्तन शीलता को समाज ही किसतरह जिम्मेदार रहा है इसका संकेत नदी की ओर करते हुए जयनाथ से कहती है -

" बहता पानी धार कहलाता है। देखो, सुबह शाम हजारों आदमी नहाने आते हैं। मगर तुम जिस जाति में, जिस समाज में पैदा हुए हो, वह जिन्दा नहीं, मुर्दा धार है, वह छाडन है। फिर भी मिथिला की उस मिट्टी का मुझे बहुत ही मोह है। " १

मजबुर होकर वह जो वाम मार्ग का जीवन जी रही है, उसकी उसे आदत सी हो गई है। इस जीवन से वह अब चाहकर भी दूर नहीं जा सकती। हररोज एक नया मित्र ढूँढती रहती है और उसे कोई न कोई प्राप्त भी हो जाता है। इसलिए अपनी नवीन रंगीन चुडियों की ओर संकेत करते हुए वह जयनाथ से कहती है -

" मेरे जितने मित्र बनते है, उतनी बार मैं चुडियाँ पहनती हूँ, और फोडती हूँ। " २

भोगे हुए जीवन के यथार्थ को कहते हुए सुशिला जब आवेश में आती है तब सिगार के कश लगाती रहती है। उसकी अवस्था एक शराबी की तरह बन गई है और इस बात का उसे जरा भी रंज नहीं होता। क्यों कि वह उसके परे पहुँच गई है। अपनी यह स्थिति जयनाथ को समझाते हुए कहती है -

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.७७, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्कारण - १९८५,

२. ---- वहीं ---- पृ.७७.

" ताडी पीनेवाले को तुमने अवश्य देखा होगा, मेरा भी वही हाल है। मैं प्रज्वलित अग्निकुंड हूँ, जो जितनी ही स्निग्ध समिधाएँ पाता है, उतना ही निर्धूम, उतना ही निठुर हो जाता है। " १

सुशिला की मर्मांतिक जीवन कहानी सुनकर जयनाथ जैसा निठुर भी अंतरतल में विव्हल हो उठता है। सुशिला जैसी कितनी विधवाओं को समाज में अपने वैधव्य के अभिशाप के कारण पेट भरण के लिए वाम मार्ग पर चलना पडता है, ऐसी असहाय औरतों को अपने चंगुल में फँसानेवाले कितने ही धर्म पुरुष हैं कि जो परोपकार के नाम पर अपनी वासना पूर्ति के लिए उनकी मजबुरी का लाभ उठाते हैं।

कुम्भीपाक -

१९६० में लिखित इस उपन्यास में नागार्जुन ने वेश्या समस्या का यथार्थ चित्रण अत्यंत भयावह रुपमें किया है। जिससे पाठक की चेतना बहुत गहराई से झकझोर जाती है। क्यों कि उपन्यासकार ने इस समस्या को विविध पहलुओं के साथ उद्घाटित किया है। समाज में प्रचलित लोक विश्वासों के अनुसार कुम्भीपाक वह नरक है जहाँ व्यक्ति मानव-जन्म में किये पापों का फल मृत्यु के बाद भोगता रहता है। लेकिन हमारे भद्र समाज की अँधेरी गलियों और घुटन भरे कोनों में चल रहे वेश्यालय स्त्री के लिए जीते - जी कुम्भीपाक [नरक] नहीं तो और क्या हो सकता है ?

इस उपन्यास चित्रित इंदिरा [भुवन] भी कुम्भीपाक में गोते खानेवाली अभागीन नारी है। जो समाज के घृणित व्यवहारों के कारण ही इस नरक में प्रवेश करती है।

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.७७ वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

उन्नीस वर्षीय इंदिरा मुंगेर गाँव के एक उच्च घर की बेटी है। पन्द्रह वर्ष की आयुमें एक पायलट के साथ उसका विवाह हो जाता है परंतु उसी वर्ष हवाई दुर्घटना में उसके पति की मृत्यु हो जाती है। बाद में उसका वही हाल हो जाता है, जो घुटन भरे युवकों और आदर्श हीन अधेडों के बीच एक तरुण विधवा का जो हाल होता है। एक रिश्तेदार के द्वारा फुसलाने से वह चार महिने की गर्भवती हो जाती है। तब वही अत्याचारी रिश्तेदार उसे गर्भपात करवाने के बहाने असनसोल गाँव ले जाता है, और उसे धर्मशाला में छोडकर रात में भाग जाता है। ऐसी असहाय और बेसहारा स्थिति में इंदिरा वहीं भीख माँगकर जीने लगती है। उसे देखकर एक गुण्डा उसे काम दिलवाने के बहाने अपने साथ लेकर धनबाद गाँव की भीख माँगनेवाली टोली में शामील कर देता है। परंतु वहाँ उसे भीख माँगने नहीं भेजता, अपने और अपने साथी के मनोरंजन और भोग विलास के लिए उसपर अत्याचार करने लगता है। सभी गुण्डे उसे बेहद परेशान करते रहते हैं। कभी शराब पीकर उसे पीटते हैं तो कभी सभी मिलकर उसपर बलात्कार करते हैं। उसे समय पर खाना भी नहीं देते। एक दिन तो उसकी ऐसी पीटाई करते हैं कि, जिसके काले-नीले निशान उसकी पीठपर उभरकर रह जाते हैं कि जो जीवन भर याद दिलाते रहे। इस मारपीट में वह बेहोष हो जाती है। ऐसी दयनीय हालत में चार-पाँच महिने गुजर जाते हैं। उसकी हालत देखकर उन्ही गुण्डों की टोली के एक गुण्डे का हृदय पिघल जाता है, वह उसे हजारी बाग ले जाता है। वहाँ अपनी प्रेमिका के घर में तीन महिनों तक छिपा रखता है। वह गुण्डा और उसकी प्रेमिका इंदिरा के साथ हमदर्दी रखते हैं, उसका भला करना चाहते हैं। इसलिए वह उसके परिचित एक बंगाली डॉक्टर भट्टाचार्य के घरमें आया का काम दिलवा देता है। डॉक्टर के परिवारवाले अच्छे लोग थे, जिससे इंदिरा दिल लगाकर काम करने लगती है। यह देखकर डॉक्टर उसे नर्सिंग का ट्रेनिंग देने की सोचता है। परंतु उसे अचानक दो वर्ष के लिए विलायत जाना पडता है। इस काल में उसकी बीवी अपने

बच्चों के साथ मायके रहने का निश्चित कर देती है। जिसके कारण इंदिरा को हजारीबाग में ही किसी की निगरानी में काम दिलवाने का विचार डॉक्टर करने लगता है। तभी उसके पिता का पुराना मित्र श्री शर्मा वहाँ आ जाता है। जो समाज सेवी भी है जिसके हाथ इंदिरा का भार सौंपकर चला जाता है।

यह शर्मा जयनगर का रहनेवाला था। उसने समाज की भूली भटकी अनाथ स्त्रियों के लिए अनाथ महिलाश्रम बनवाया था और इस आश्रम को " संजीवन आश्रम " नाम दिया था। इसका संचालन अनाथ महिलाओं के द्वारा ही होता था। इस आश्रम की ट्रस्टी में वह स्वयं, मन्नूलाल व्यापारी, पुस्तक प्रकाशक तिलकधारी दास और गांधीवादी नेता रायसाहब आदि थे। इस आश्रम के मैनेजर बाबू मुंद्रिका प्रसाद थे। यह आश्रम लोगों से चंदा जमाकर चलाया जाता था। इस संदर्भ में मैनेजर मुंद्रिका प्रसाद कहता है -

" समाज जिनको वापस लेने के लिए तैयार नहीं होता उन लड़कियों के लिए दुनिया गेंद का मैदान है, सौ ठोकरों के बाद भी निश्चिय नहीं की गोल पर पहुँच ही जाएँगी। हमारी कोशिश है कि वे सही ठिकाने पा जाएँ, किसी न किसी सहारे टिक जाएँ --- " १

आश्रम का यह उद्देश शर्मा की धन लोलुपता के कारण विकृत हो जाता है, वह ऐसी अनाथ महिलाओं को खोज खोज कर लाता है और जुआ एवं तिलकधारीदास की सहायता से बेचता रहता है। कुछ धनिकों की शय्या सजाने के लिए उपयोग करते हुए पैसे कमाता है।

शर्मा उसे पटना के मुन्शी मनबोधलाल के यहाँ किराये पर लिए

---

१. नागार्जुन - कुम्भीपाक- पृ. ८७, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

मकान में ले आता है और उसे अपनी भतीजी बनाकर उसका नाम भुवन रख देता है, स्वयं उसका चाचा और उसके साथ व्यवसाय में सहायता करनेवाली चम्पा को बुआ बनाकर रहने लगता है। ऐसे झूठे रिश्ते वह इसलिए स्थापित कर देता है कि, जिससे उसके गोरख धंदो पर किसी को शक न हो। विशेषत: पुलिस और प्रेसवाले से वह भयभित रहता है।

इसी कारण बुआ चम्पा इंदिरा को कहीं बाहर जाने की तथा किसी के साथ अधिक बोलने की इजाजत नहीं देती। फिर भी इंदिरा पडोसी कम्पाऊडर की बीवी से मिलती रहती है। जिससे उन दोनों में सहेलीपन निर्माण होता है, यहाँ तक कि, कम्पाऊडर की बीवी उसे छोटी बहन मानकर बर्ताव करने लगती है। इतनी घनिष्ठता होनेपर भी इंदिरा अपनी असलियत नहीं बताती। परंतु कम्पाउडर की बीवी उसकी बुआ के चाल-चलन और शोषण को समझ लेती है और इंदिरा के प्रति इतनी हमदर्दी दिखाती है कि जिससे इंदिरा के मनमें उसके प्रति विश्वास का अंकुर पनपने लगता है।

एक दिन इंदिरा को बाहर ले जाने की तैयारी आरंभ होती है, उसे पहलीबार किमती साडियाँ और ब्लाऊज एवं प्रसाधन लाये जाते हैं। उसे एक दो दिन के लिए बाहर जानेकी सूचना भी बुआ दे देती है। इस तैयारी से इंदिरा आशंकित हो जाती है कि उसे कहीं बिकने की योजना बनायी जाती है। उस का यह शक भी सही निकलता है। शर्मा किसी धनिक विधुर को तीन हजार में उसे सौंपने का निश्चित कर देता है। इस खबर से इंदिरा का दिमाग चकरा जाता है। आज तक इतना सब भोग लेने के बाद भी और आगे नियति ने कौनसा खेल प्रारंभ करना है ? इस भयकंपित विचार से उसका काम करने में ध्यान नहीं लगता जिसके कारण दुध उबल जाता है, पापड जल जाता है, पानी की बाल्टी भर कर बह जाती है। यह बेचैनी उसे इतना संत्रस्त बना देती है कि, सब कुछ कम्पाऊडर की बीवी को कहे बिना उसे रहा नहीं जाता।

तब वह स्नान करने बाथरूम जाती है। संयोगवश उसके बाथरूम के पास कम्पाउडर की बीवी हाथ धोने आती है। तब इंदिरा उसे होनेवाले कार्य के संबंधी जानकारी बताती है। -

इसपर कम्पाउडर की बीवी कुछ विचार करके हिम्मत के साथ इंदिरा को भगाने की योजना मन ही मन निश्चित कर उसे दृढता पूर्वक विश्वास दिलाती है -

" अब तुझे कोई बेच नहीं सकता, न खरीद ही सकता है कोई। तुझपर तो अब मेरा ही हक है। मैं ने तुझे अपना दिल देकर खरीद लिया है। देखूँ, कौन मेरी बहन का गला काटता है। .... घबडाना नहीं इन्दो, आज से तेरी नयी जिंदगी शुरु हुई .... उन शैतानों से मैं निबट लूँगी, तू रत्ती-भर फिक्र न कर .... १ "

मकान मालिक मुन्शी मनबोधलाल की पतोहू की सहायता से कम्पाउडर की बीवी इंदिरा को बाथरूम से एक हॉल में कुछ घण्टोंतक छिपाती है और रात होते ही पडोसी विभाकर नामक युवक के साथ उसे बनारस भेज देती है। वहाँ कम्पाउडर की बीवी का मौसेरा भाई सदानंद, जो प्रोफेसर था और उसकी पत्नी रंजना, हाइस्कूल अध्यापिका थी। इन दोनों के पास इंदिरा का निश्चित ही भला हो जाएगा ऐसा सोचकर उनके पास भेज देती है।

इंदिरा के भाग जाने पर शर्मा, तिलकधारी दास झल्ला उठते हैं। चम्पा बुआ पर गुस्सा उतारते हैं। उनका शक कम्पाउडर की बीवी पर रहता है। परंतु कुछ नहीं कर सकते, क्यों कि उनका गोरख धंदा

---

१. नागार्जुन - कुम्भीपाक - पृ. ४९, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

आबाद रखने में ही भलाई मानकर चुपचाप शर्मा और चम्पाबुआ संजीवन आश्रम वापस जाते हैं। इंदिरा के भाग जाने से चम्पा बुआ बेचैन हो जाती है। अंतर्मुख हो जाती है। उसकी सोई हुई स्वाभिमान की भावना जागृत होने लगती है।

बुआ चम्पा, वही चम्पा है जो विधवा होने के बाद जीजा, सफदर खटिक, तीक्ष्ण सरदार से गोते खाकर शर्मा के आश्रम में "रिश्ते की बहन" बनकर नारी विक्रय में साजेदार बनकर अश्राप, असहाय,बेसहारा युवतियों को वाम मार्ग पर बहकाने का कार्य करती है। वह जिस आश्रम में रहती है, वहाँ कुन्ती, मन्नो, मनोरमा, मीना, नेपालिन युवती आदि असहाय तथा मजबूर युवतियों को वेश्या बनाकर उनका विक्रय करने में सहायता करती है। "बुआ" बनकर उनपर निगरानी रखती है। परंतु इंदिरा के कारण वह सचेत हो जाती है और शर्मा की घृणा करने लगती है। इंदिरा [भुवन] के साहस पर वह मन ही मन खुश हो जाती है।

" शाबास भुवन, शाबास! उस खूसट को तुमने बडी सफाई से अंगूठा दिखा दिया, बलिहारी है! शर्मा जी खूब छके! बड़े आये बाप और चाचा बननेवाले। ---- इस बुड्ढे की नाक में छल्ला डालकर, भुवन, तुमने अपनी ही नहीं बल्कि सभी औरोतों की नाक रख ली ---- चली गयी, भुवन तुमने ठीक ही किया! मालदार तो मतलब का ही सौदा करता है ------ तुमसे तबीयत भर जाती तो दूसरी का सौदा करता! पेट भरा हो और टेंट में काफी रकम हो तो हरी - हरी चरना चाहेगा ----- तुम ने अच्छा किया भुवन! इस कुम्भीपाक से निकल भागी, खूब किया! ----- " १

---

१. नागार्जुन - कुम्भीपाक - पृ. ७९-८०, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण १९८५.

चम्पा अपने आप को कोसते हुए कुछ करके दिखानेका सोचती है। वह कहती है -

" आप पढे-लिखे लोग जब चुप्पी साधे हुए हैं, तो मुझ जैसी जाहिल औरत क्या सोचेगी ? मर्द जो भी लीक खींच देते हैं, हमारे लिए वही वज्र लेख हो जाता है। हमारी अकल गौरैया की तरह फुदक सकती है, दूर की उडान नहीं भर सकती। " १

स्त्रियों के लिए ऐसे नरक निर्माण करनेवाले दलालों पर और नारकीय जीवन पर व्यंग्य कसते हुए, वह ऐसे शरीर विक्रय और मनमुटाव की अपेक्षा श्रम करना पसंद करती है -

" कुन्ती और चम्पा जैसी औरते सडक के किनारे फुटपाथ पर बैठकर पकोडे छानती, बडे घरों के महराजिन या आया का काम करती, अपनी पसंद के मुताबिक किसी चपरासी या ड्राइवर या पुलीस वाले या किरानी के साथ रह जाती ----। --- तुम्हारे जैसे दलालों की जुतियाँ चूसने की अपेक्षा फिर भी वह जीवन कहीं बेहत्तर होता, कहीं ताजा। -----" २

ऐसी बेचैनी की अवस्था में वह शर्मा से दूर हो जाने का निर्णय लेती है। उसके नाम पर बैंक में पाच हजार की रकम थी, उसमें से चार हजार शर्मा के खाते पर भर देती है और अपना निर्णय शर्मा को स्पष्ट कह देती है, तब वह चम्पा पर झल्ला उठते है और कहते हैं -

" तुम मुझे कहीं का न रखोगी। तुम मुझे बे अबरु कर देगी। मेरी

---

१. नागार्जुन - कुम्भीपाक- पृ. ८५, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण १९८५.

२. ----- वहीं ------ पृ. ८७.

नाक में कौडी किसी ने नहीं बाँधी थी, वह श्रेय भी तुम्ही को हासिल होगा चम्पा। ----" १

गुस्से में वह काँच का गिलास चम्पा पर फेंक देता है, जिससे चम्पा के माथेपर और दाहिनी केहुनी पर जख्म हो जाती है। इसी तरह कुछ दिन बित जाते हैं। इस काल में वह आश्रम के टाइपराटर पर हररोज घण्टा - डेढ घण्टा टाइपिंग सीख लेती है, और एक दिन गाँधीवादी नेता रायसाहब की भेंट लेकर उनकी मदद से असहाय, बेबस, निराधार स्त्रियों को सहारा, प्रेम, शिक्षा देने के लिए "शिल्प कुटिर" संस्था शुरु कर देती है। इस संदर्भ में रायसाहब से चर्चा करते हुए "आश्रम" पर व्यंग्य कसती हुई कहती है -

" इस "आश्रम" शब्द से मैं बहुत घबराती हूँ। रही होगी इसके पीछे कभी कोई अच्छी भावना, अब तो ये आश्रम अनैतिकता के अड्डे हैं --- स्वार्थियों के अखाडे। हमारी जैसी मूक असहाय बकरियों को ही नहीं, आप जैसे आदर्शवादी धर्मभीरु बैलों को भी बलि इन आश्रमों के अन्दर चढती आई है। अब वक्त आया है कि इन आश्रमों के ढाँचे हम बदल डालें ---- " २

इंदिरा और चम्पा के जीवन को देखने पर यही स्पष्ट हो जाता है कि तिलकधारी दास जैसे प्रकाशक और बी.एन्.शर्मा जैसे आत्महीतरत नराधम समाज सेवक या पापी व्यक्ति, कैसे अनेक अबोध, सरल, भाग्यहीन, और आर्थिक स्थिति से मजबुर युवतियों की असहाय स्थिति का लाभ उठाकर धन कमाते हैं।

---

१. नागार्जुन - कुम्भीपाक - पृ.१११, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

२. ----- वहीं ----- पृ. ११३.

[क] विवाह की कुप्रथाएँ -

पुरुष प्रधान संस्कृति के कारण विवाह विषयक जो भी प्रकार प्रचलित हो गये हैं, उनमें पुरुष की इच्छा तथा भावना को अधिक स्थान रहा है। परिणाम स्वरूप अनमेल विवाह, बहु विवाह तथा जरठ विवाह आदि कुप्रथाओं का प्रचलन होता गया। नारी को " मनुष्य " नहीं " वस्तु " मानकर ही उसका विवाह कभी निर्धनता के कारण कभी दहेज के कारण, तो कभी उच्च कुलीनता के कारण अयोग्य पति से होता रहा जिसके कारण नारी को कष्टदायी और वेदनामय जीवन जीना क्रमप्राप्त हो गया।

इसका चित्रण " रतिनाथ की चाची ", " नयी पौध " और " पारो " उपन्यासों में मिलता है।

रतिनाथ की चाची -

१९४८ में लिखित इस उपन्यास में विधवा समस्या के साथ-साथ नारी विक्रय और बिकौआ जैसी विवाह की कुप्रथाओं का भी जिक्र किया है। इस उपन्यास की विधवा गौरी अपनी सत्रह वर्षी बेटी प्रतिभामा का विवाह अपनी निर्धन, स्थिति से मजबूर होकर भागलपुर के एक चालीस वर्षीय अधेड ब्राम्हण के साथ करा देती है। यह दुल्हा कुलीनता की दृष्टि से हीन और बुध्दि की दृष्टि से मूर्ख है। उसने यह विवाह भोला पंडित जैसे बिचौले की सहायता से विधवा गौरी को सात सौ रुपये नकद देकर किया है। परिणाम स्वरूप प्रतिभामा अपना वैवाहिक जीवन अत्यंत कष्टमय और विपदाओं के साथ जीने लगती है। जिससे वह बरसों तक अपने मायके नहीं जा सकती।

इसी गौरी की ननद सुमित्रा जो सोलह वर्षीय है। कुलीनता की दृष्टि से श्रेष्ठ परंतु गरीब होने के कारण उसका विवाह बडहडवा के पचास वर्षीय मेवालाल ठाकूर से दो सौ रुपये नकद, सौ मन कनकजीरा चावल, पन्द्रह मन अरहर की दाल, दो मन घी और पाँच गाँठ कपडा जवाहिर आदि लेकर किया जाता है। परिणाम स्वरूप विवाह के दो वर्ष बाद एक पुत्र प्राप्ति के उपरान्त वह विधवा हो जाती है और नैष्ठिक ब्रम्हचर्य का कठोर पालन करते हुए गृहस्थी चलाती रहती है।

रतिनाथ की नानी का भी यही हाल है। वह अच्छे और कुलीन ब्राम्हण माँ-बाप की तीसरी बेटी है। उसके बचपन में ही माँ-बाप मर जाने के कारण उसके चाचाने तीन सौ रुपयों में माणिकपुर निवासी रतिनाथ के नाना को बेच देता है। अभाव-अभियोग के बीच पलनेवाली इस स्त्री का स्वभाव ऐसा उदार और विनित रहा है कि, जिसके कारण वह कम से कम पहनती है, कम से कम खाती-पीती और अधिक से अधिक बर्दाश्त करती रही है। वह अपने पतिकुल की गति विधीयों में ऐसी मग्न होकर कष्ट उठाती रही है कि, जिससे माणिकपुर में वह पुण्यश्लोक नारी कहलाने लगती है।

इस उपन्यास में उपन्यासकारने बहु विवाह के अंतर्गत प्रचलित बिकौआ प्रथा का भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। बिकौआ प्रथामें मैथिल ब्राम्हणों को दस से बीस तक विवाह करने की इजाजत दी गई है। ये पति महाशय दस-दस विवाह तो कर लेते हैं लेकिन पत्नी को मायके में रखते है और अपनी इच्छानुसार मनचाहे तब पत्नी के पास साल डेढ साल में एक बार जाते हैं और वहाँ महिना-डेढ महिना तक रहते हैं। इस तरह उनका अधिकांश जीवन अपने ससुराल में बीत जाता है। इसका नतिजा यह हो जाता है कि ऐसी पत्नियाँ अपनी वासनापूर्ति के लिए कुमार्गपर चलने लगती है।

इस उपन्यास में चित्रित इंद्रमणि झा को कुल चार कन्याएँ हैं। अपनी कन्याओं को उच्च कुलमें ब्याहने की सनक उसपर सवार हो जाती है। परंतु मिथिला का ब्राम्हण जो जितना कुलीन होता है उसकी दरिद्रता उतनीही अधिक रहती है। इंद्रमणि अपनी तीनों कन्याओं की शादी तो कराता है लेकिन आजन्म उनका भरण पोषण करना पडता है। क्यों कि वे तीनों दामाद परम अभिजात और महादरिद्री रहे हैं। चौथी और छोटी कन्या सधन पति की पत्नी होने के कारण अपने ससुराल में रहती है। इन तीनों में से एक नि:सन्तान है और दो नाममात्र सधवा कहलाती है। क्यों कि उन दोनों का विवाह बिकौआ पति से हुआ है। उनमें से एक का नाम है जनक किशोरी और दूसरी का नाम है शकुंतला। दोनों बहने बुध्दिमान और स्वभाव से तीव्र हैं। परंतु यह तीव्रता वे अपनी करतुत से सिध्द करती है। जनक किशोरी के पति की दस और शकुंतला के पति की सात शादियाँ हो गयी हैं जिससे उनके पति साल डेढ साल में केवल डेढ दो मास अपनी पत्नी के साथ रह पाते हैं। इस स्थिति के कारण जनक किशोरी और शकुंतला गुप्त संबंध स्थापित कर लेती हैं। जनक किशोरी कुल्ली राऊत के बेटे से संबंध रखती है जिससे उसकी दोनों सन्तानें कुल्ली राउत के बेटे जैसे रही हैं। तो शकुंतला अपने चचेरे भाई से संबंध रखती है जिससे उसका तीसरा बेटा हू-ब-हू उसके चचेरे भाई की शक्ल का होता है।

नयी पौध -

१९५३ में प्रकाशित इस उपन्यास में उपन्यासकारने अनमेल विवाह समस्या के साथ-साथ इस विवाह पध्दति से निर्मित नारी विक्रय की प्रथा का भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में चित्रित खोंखा पंडित अपनी धनलोलुपता के कारण अपनी सात बेटियों में से छ: बेटियों

को बेच देता है। उनका मोल भाव इस प्रकार रहा है - महेसरी को ११०० में, भुवनेसरी को ८०० में, गुनेसरी को ७०० में, गुजिसरी को १००० में, वानेसरी को ७०० में, धनेसरी को ९०० में बेच दिया है। जिससे सभी बहने अयोग्य वरों को प्राप्त कर लेती हैं। परिणाम स्वरूप उनका जीवन दुःख और यातनाओं से युक्त बन जाता है। इसलिए वे सभी बहने अपने बाप के नामपर दिनरात रोती रही हैं। क्यों कि उनमें से कोई गुंगे के पल्ले पडी है तो कोई बौडम के पल्ले। तो कोई तीन जिले पार ब्याही गयी है तो कोई पाँच सौ कोसपर। उनमें से चार बहने वैधव्य के अभिशापसे ग्रसित है। एक पगली हो जाती है तो एक को उसका अदमखोर पति किरासन तेलसे जलाकर खाक कर डालता है। इतना सब होते हुए भी खों खा पंडित अपनी बडी बेटी रामेसरी की चौदह वर्षीय पुत्री बिसेसरी को भी दाँव पर लगाता है। उसे ९०० रूपयों में सितामढी के साठवर्षीय कश्तकार चतुरानन चौधरी के हाथ सौंपना चाहता है। परंतु बिसेसरी की विधवा माँ रामेसरी और गाँव के नवजवानों के कारण उसका यह दाँव फँस जाता है।

पारो -

१९७५ में प्रकाशित इस उपन्यास में उपन्यासकारने अनमेल विवाह समस्या का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करते हुए नारी विक्रय प्रथा की ओर संकेत किया है। इसमें चित्रित पंडित पुध्दि चौधरी अच्छा-भला आदमी कहलाता है फिर भी केवल ८०० रूपयें मिलते हैं इस भावनासे अपनी कली जैसी कोमल अबोध बेटी को एक अट्ठावन वर्षीय बूढे के गले में बाँध देता है।

[ड] बलात्कार और अन्य अत्याचार -

भारतीय समाज में नारी का जीवन अत्यंत दुःखदायी रहा है।

LIBRARY ... KOLHAPUR

पुरुष अपनी इच्छानुसार नारी का भोग वस्तु के रुपमें उपयोग करना चाहता है। यदि नारी उसे उचित प्रतिसाद नहीं देती तो पुरुष अपना अपमान समझकर वह अपना पौरुषत्व सिध्द करने के लिए उसपर बलपूर्वक अत्याचार करते हुए भोगना चाहता है। नारी इच्छा के विरुध्द होनेवाले इस अत्याचार को ही बलात्कार कहलाते हैं। बल का प्रयोग करने में यदि पुरुष असफल बन जाता है तब वह नारी को अन्य प्रकारों से पीडा देता रहता है। पुरुष का यह रुप उसकी विकृत काम-वासनाका ही प्रतीक है। जिससे वह कभी नारी को मारपीट करता है, कभी उसे ठीक समय पर खाना नहीं देता, तो कभी प्रत्येक बात में नारी को अपमानित करता रहता है। पुरुष को इस कामविकृत अत्याचारों के कारण ही नारी का जीवन वेदनाग्रस्त बन जाता है, ऐसी असहाय स्थितिमें वह कभी आत्महत्या करने के लिए प्रवृत होती है, तो कभी पुरुष की घृणा करने लगती है।

नागार्जुन नारी के पक्षधर है। इसलिए उन्हें नारी के दु:खद जीवन के सभी पहलुओं को अत्यंत सूक्ष्मता के साथ अपने उपन्यासोंमें चित्रित किया है। पुरुष द्वारा नारी पर किए जानेवाले बलात्कार तथा अन्य अत्याचारों का यथार्थ वर्णन उन्होंने अपने " रतिनाथ की चाची " और "बलचनमा" आदि उपन्यासों में किया है।

रतिनाथ की चाची -

१९४८ में लिखित इस उपन्यास में विधवा समस्या के साथ साथ नारी पर किये जानेवाले अत्याचारों का भी वर्णन प्रस्तुत किया है।

रतिनाथ की माँ माणिकपुर के पाठक की बेटी जो गौर-श्याम वर्ण की है। परंतु दमे की रोगी होने के कारण ज्यादातर लेटी रहती है।

रतिनाथ का पिता रूद्र स्वभाव का है, उसे अपने आप पर ब्राम्हण होने का अभिमान है। पूजा-पाठ, गप-शप, सैर सपाटा, बाबा वैद्यनाथ, बाबा विश्वनाथ, दुर्गाकाली आदि पर चर्चा करना उसे अधिक प्रिय लगता है। इसके अतिरिक्त भंग भी प्रिय रही है। वह हररोज दोपहर के समय जोर-जोर से भंग रगडना शुरू कर देता है। जिससे उसका दीप्त चेहरा और अधिक गहरा होता है। भंग रगडते रगडते बीच में ही रूककर कुंडी की ओर गौर से देखकर भंग का अंदाजा लेता है। जब भंग तैयार हो जाता है तब बम्भोले का जप करते हुए धीरे धीरे सेवन करने लगता है। जीभर के भंग पीने से उसकी आँखें तर्र हो जाती है। ठीक इसी समय यदि कुछ उसे अप्रिय महसूस हो जाता है तो गालियों की बौछार शुरू कर देता है, तो कभी-कभी अपने साडेतीन वर्षीय बालक रतिनाथ को भी ऐसा पीटने लगता कि, उसके हाथों से रतिनाथ को बचाने का साहस केवल उसकी चाची गौरी ही कर सकती है। इस मारपीट के कारण रतिनाथ के मन में अपने बाप के प्रति प्रतिहिंसा का भाव सुलगता रहता है, जिससे वह अपने बाप को घूर-घूर के देखता रहता है।

एक दिन जयनाथ भंग पीकर तर्र हो जाता है जब सामने दमे की बीमारी से लेटी हुई पत्नी को देखता है तो उसका गुस्सा सुलगने लगता है। यह गुस्सा उसकी कुण्ठित कामवासना का ही रूप है। वह झट्से कोने में पडी कुल्हाडी उठा लेता है और पत्नी के पास जाकर उसे खींचने लगता है। जब वह उठ नहीं पाती तब आवेश के साथ उसका गला घोंटने लगता है। बिमारी से अशक्त बनी पत्नी केवल घिघ्याती, छटपटाती रह जाती है। अपने बाप का यह रूप रतिनाथ घर के कोने से देख लेता है और अपनी माँ की सहायता के लिए विव्हल हो जाता है। चिल्लाना चाहता है लेकिन बाप के भय से कुछ नहीं कर सकता। यदि वह चिल्लाता तो भी उसके बाप जैसे नरमेध के कृत्य में हस्तक्षेप करने का साहस करनेवाला वहाँ कोई नहीं आता।

परिणाम स्वरुप उसकी बीमार माँ पिपयाती हुई दम तोड देती है। इस घटना का असर उसपर हो जाता है। वह अपने बाप से भयभित और आतंकित रहने लगता है। वह मन ही मन अपनी चाची गौरी को ही माँ-बाप समझने लगता है।

रतिनाथ की माँ मरने के बाद जयनाथ को दूसरा विवाह करने के लिए पास पडोस के लोग समझाते हैं, परंतु वह इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता। अपनी जीभ निकालकर और दोनों हाथ कानोंपर रखकर कहने लगता है -

" नहीं ---- नहीं। --- हरे-हरे। इतना हलका मत समझिए। जगदम्बा की कृपा होगी तो दस वर्ष में रत्ती ही इस योग्य हो जाएगा। मैं तो अब यही प्रयत्न करूँगा कि देवधर या विन्ध्याचल में कोई मारवाडी अपने राम के लिए छोटी-सी एक मडैया डलवा दे, बस। " १

बादमें जयनाथ साल के अधिक दिन भटकता ही रह जाता है। कभी तीर्थयात्रा के निमित, तो कभी अनुष्ठान या पारायण के निमित, तो कभी रिश्तेदारी के निमित। परंतु इस कार्य से रतिनाथ मातृपितृहीन बालक के समान ही अपनी चाची के पास रहने लगता है। माँ के मृत्यु के बाद उसके घर की दशा खण्डहर के समान हो जाती है, घर को न कोई लिपता-पोतता है, न झाडू लगाकर साफ-सुथरा रखा जाता है। यह देखकर रतिनाथ की चाची कहती है -

" रतिनाथ की माँ मर गई, तभी से घर की शोभा चली गई। चूहे, झींगुर और नेवले रहते हैं अब। मगर इस साल उनके भी रहने लायक

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.३२, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली -२, प्रथम संस्करण - १९८५.

नहीं रह जायेगा ...." १

इससे यह स्पष्ट होता है कि जयनाथ के अकारण क्रोध और भंग सेवन से बने अत्याचारी स्वभाव के कारण ही रतिनाथ को मातृहीन होना पड़ता है। घर की दुर्दशा हो जाती है, वह स्वयं भी भटकता रहता है। यह सब देखकर रतिनाथ के मन में अपने बाप के प्रति घृणा बढ़ती जाती है।

बलचनमा -

इस उपन्यास में जमींदारों की ओर से निर्धन तथा गरीब लोगोंपर होनेवाले अत्याचार और शोषण के खिलाफ साम्यवादी चेतना से पनपनवाले आंदोलन का चित्रण भी मिलता है।

" रेबनी " इस उपन्यास के नायक बलचनमा की एकलौती बहन है, जो पन्द्रह साल की है जो देखरे में साँवली और सतेज है। वह बचपन से ही अपनी माँ के साथ कभी बड़े मालिक, कभी मंझले मालिक तो कभी छोटे मालिक की हवेली पर बरतन माँजने, पानी भरने, झाड़ू लगाने, लीपने-पोतने तथा आटा पीसने के काम करने जाती रही है। बलचनमा तो हमेशा मजदूरी के लिए छोटे मालिक की हवेली पर या खेत पर ही रहा करता है और कभी-कभी घर आता है।

रेबनी सयानी हो जाने के कारण बलचनमा की चिन्ता बढ़ने लगती है। वह उसका विवाह कर देने का विचार करने लगता है। समस्तीपुर गाँव जमींदारों का गाँव है। यहाँ के जमींदार खवास, नौकर-चाकरों को रखकर सभी काम करवा लेते हैं। और खुद खुश मिजाज और

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.१३७, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण - १९८५.

आराम से रहते हैं। इसलिए वे कभी ताश-शतरंज खेलते हैं, तो कभी सिनेमा देखते हैं, कभी शहर की चक्कर लगाते हैं, तो कभी सिनेमा देखते हैं, कभी शहर की चक्कर लगाते हैं। ऐसी विलासी जिन्दगी के कारण जवान से लेकर बूढे तक सभी जमींदार अपनी पापी नजर गाँवमें आने - जानेवाली नवेलियों के घुंघट पर रखते हैं, जब तक तिरछी नजर से उसका मुख नहीं देख पाते तब तक चैन नहीं पातें। यहाँ तक कि जिसपर बाप बेताब होता है उस पर बेटा भी फिदा हो जाता है। इसके बारे में बलचनमा का कहना है कि -

" जिनके पास दौलत होती है, वह निपट अन्धे होते हैं, अपना-पराया कुछ नहीं सुझता --- और हम तो गरीब ठहरे। हमारे पास और क्या चीज होती है। कमाने-खटने को ये दो हाथ, माँ-बहन, बेटी की इज्जत-आबरु, यही न हम लोगों की दौलत है ? --- हम उनकी भी हिफाजत अगर न कर पावें तो यह जिनगी किस काम की। --- गरीबी नरक है भैया, नरक। चावल के चार दाने छींटकर बहेलिया जैसे चिडियों को फँसाता है, उसी तरह ये दौलतवाले गरजमंद औरतों को फँसा मारते हैं। उनके पास धन भी होता है और अकल भी होती है। अपरंपार है उनकी लीला। बडे खानदान का आवारा से आवारा आदमी भी पंडितों और पुरोहितों से भलमनसाहत का फतवा पा जाता है -। ---- " १

इसी कारण बलचनमा जमींदारों की हवेली पर रेबनी का काम करना ठीक नहीं समझता। चाहे छोटे मालिक हो या उनके यहाँ काम करनेवाले बाबू लोग - हीराबाबू, बुच्चन बाबू, मानिक बाबू, लालसाहब -

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ.५०-५१, किताब महल, इलाहाबाद - ३, नवाँ संस्करण - १९८७.

सभी एक से एक सैतान हैं, एक से एक मजनूँ। ये कभी-न-कभी रेबनी को अपने चँगुल में जरूर फँसाएँगें। और यह भी ठीक नहीं समझता कि उसकी आमदनी पर गृहस्थी को चलाए। इसलिए जितना हो सके उतना जल्दि कहीं न कहीं उसका विवाह कर देना अच्छा समझता है। जब बलचनमा अपने इन विचारों को अपनी माँ के पास व्यक्त करता है, तब वह मालिक लोगोंपर शंकित होना उचित नहीं समझती। वह नहीं चाहती कि पानी में रहकर मगर से बैर रखे। क्यों कि इन्हीं मालिकों के सहारे तो गरीब जीते हैं। इसी श्रध्दा के कारण वह उनके बारे में कहती है -

" जिन लोगों का जूठन खाकर तू बडा हुआ है, उन्ही के बारेमें ऐसी-ऐसी बाते सोचता है ? अधरम होगा रे बलचनमा,अधरम ? भगवान नाराज हो जायेंगे। ----- बूढे-पुराने भी तो तेरे इन्ही लोगों का जूठन खाकर, फेरन-फारन पहन ओढकर अपनी जिनगी गुदस्त कर गये। उतना उडाकू मत बन बेटा। " १

इसपर बलचनमा कुछ नहीं बोलता। इस के बाद कुछ दिनों में ही रेबनी का विवाह पटना के होटल में काम करनेवाले एक व्यक्ति से निश्चित कर देता है। रेबनी हररोज हमेशा की तरह अपनी माँ के साथ छोटे मालिक की हवेली में काम करने जाती है। और बलचनमा भी मालिक के खेत पर मजदूरी करने जाता रहता है।

छोटे मालिक, जो राँची-हजारीबाग की तरफ किसी राजा के यहाँ मॅनेजर की नोकरी करते हैं और साल में एक-दो-महिने की छुट्टी पर गाँव आते हैं। इस काल में छोटी मालकिन गुणवन्ता कुछ दिनों के

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ.५१, किताब महल,इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण - १९८७.

लिए मायके जाती है। हवेली में ना मालकिन और घरमें ना कुछ काम जिसके कारण बैठे-बैठे उब जाते हैं। मन बहलाव के लिए तरसते रहते हैं।

एक दिन बलचनमा की माँ और रेबनी छोटे मालिक की हवेली में आटा पीसने का काम करते रहती हैं। इतने में कहीं बाहर से छोटे मालिक आ जाते हैं। सामने रेबनी को ललचाई नजर से देखते हुए उसकी माँ से कहते हैं -

" बलचनमा की माँ, अरे लडकी तो तेरी बढकर ताड हुई जा रही है। " १

इसपर बलचनमा की माँ अपनी नजर झुकाये ही उत्तर देती है -

" बच्ची है, बाबू अभी, क्या खाकर ताड होगी ? --- " २

मालिक लोगों के सामने नोकर-नोकरानी हमेशा नजर झुकाकर कम से कम बोलते हैं इसलिए वह और कुछ नहीं बोल पाती। जब आटा पीसने का काम समाप्त होता है तब छोटे मालिक अंदरवाले कमरे से आवाज देकर रेबनी को पंखी झलाने के लिए बुलाते है और उसकी माँ को रसोई घर जाकर चुल्हा जलाने का हुक्म देते हैं।

रेबनी संकोच के साथ नजर झुकायी उनके पास खडी रहकर पंखी झलाने लगती है। तब छोटे मालिक उसकी ओर घुर-घुर के देखने लगते हैं और आहिस्ता से अपनी जेब से एक अठन्नी निकालकर पलंग के कोने पर रख देते है। रेबनी झुकी नजर से देखलेती है और अबोध मनसे सोचती है कि शायद मालिक सरकार दुकान से कुछ मँगवाना चाहते हैं। रेबनी का निर्विकार खडा रहना मालिक को पसंद नहीं आता क्यों कि वे अपनी जवानी में ऐसी दुअन्नी में गाँव की अनेक गरीब युवतियों को प्राप्त कर

---

१. नागार्जुन - बलचनमा-पृ.५५, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण-१९८७.

२. ------ वहीं ------ पृ.५५.

लिया था। इसलिए वे रेबनी को अठन्नी उठाने के लिए हाथ से इशारा करते हैं। परन्तु रेबनी ऐसे अनुभवोंसे अनभिज्ञ होनेके कारण गुमसुम खडी रहती है।

यह देखकर छोटे मालिक अपना हाथ आहिस्ता-आहिस्ता उसकी कलाई तक बढाते हैं। परंतु रेबनी इस इशारे को नहीं समझाती। वह समझती है कि, अनजाने में लग गया होगा। इसलिए दो पाँव पीछे हटकर पंखी झलाने लगती है, परंतु दुबारा मालिक की हरकत देखकर शंकित हो जाती है और तिरछी नजर से उनका चेहरा देखने लगती है। तब उसे उनके चेहरे पर कुछ और ही भाव दिखाई देते हैं इसलिए वह पीछे हटने लगती है। यह देखकर मालिक पलंग से उठकर रेबनी की ओर मुस्कराते हुए बढने लगते हैं। तब रेबनी केवल "सरकार यह आप को क्या हो गया है-इतना ही कहती है। उसके हाथ से पंखी छुट जाती है और मालिक उसकी कलाई पकडकर पलंग की ओर खींचने लगते हैं। तब भय के मारे हल्की सी चीख मारकर झटके से कमरे के बाहर जाने लगती है। यह देखकर मालिक अपनी बाहपर नाखून से खरोंच लेते है और जोर-जोर से रेबनी की माँ को बुलाते हैं। जब वह आ जाती है तब जख्मपर लगाने के लिए मिट्टी का तेल लाने का हुकुम देते हुए कहते हैं कि बर्रे ने जरा काट लिया, यह देखकर तुम्हारी बेटी कैसे चीख मारकर भाग गयी है जैसे कि उसे कोई भूत लग गया हो। रेबनी की माँ मिट्टी का तेल लाने बाहर जाती है और मालिक कोने में भय से काँपती हुई खडी रेबनी की ओर मुडकर मुस्काते हुए कहते हैं -

" पगली कहीं की। अखिर हुआ क्या है तुझे ? मैंने तो यों ही जरा छू दिया था और तू करन - पिसाची खेलने लगी। तेरी जितनी उमर में ही तेरी माँ का गौना हुआ था। और इसी तरह पचीसों बार मैं ने उसका हाथ पकडा होगा ---- " १

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ.५८, किताब महल, इलाहाबाद-३,
नवाँ संस्करण - १९८७.

इसपर रेबनी गुस्से से तुनक कर कहती है कि, आप झूठ बोलते हैं। परंतु मालिक अपने दोनों हाथ फैलाकर उसे बाहों में लेने के लिए आगे बढते देखकर रेबनी दूर हटने का प्रयास करती हुई केवल इतना ही कहती रहती है -

" यह क्या हो गया आज आप को मालिक ? ---- सरकार ---- सरकार - । " १

और मालिक उसे अपनी बाहों मे खींच ही लेते हैं और कसकर चूमने लगते हैं, रेबनी प्रतिरोध करने का प्रयास करती है, परंतु जबरदस्ती बढती जाती है। रेबनी के लिए यह बिलकुल नयी घटना थी। वह छटपटाने लगती है, उसका शरीर पसीने से भीग जाता है, भय से काँपने लगता है। मालिक का राक्षसी रूप और क्रियाकलाप देखकर वह पूरे बल के साथ झटके से बाहर की ओर भागने का प्रयास करती है परंतु कामांध बने हुए मालिक ने उसका आँचल इतने जोर से खिंचक देता है कि जिससे वह फर्शपर गिर जाती है। जब उठने का प्रयास करती है तब फिर उसे मालिक पकड लेता हैं। उन पर नशा चढ जाता है, होश-हवाश खो जाता है। वे उसके शरीर पर काबू पाना चाहते हैं। पन्द्रह वर्षीय अबोध, असहाय रेबनी कुत्ते-बिल्ली की तरह छटपटाने लगती है। अपने पूरे बल से छाती पर रखा हुआ मालिक का हाथ हटाना चाहती है परंतु पैरों पर मालिक का ऐसा भार रहता है किजिससे वह असमर्थ बन जाती है फिर भी पूरे बल के साथ मालिक की कलाई पर इतने जोर से दाँत गडा देती है कि, जिससे मालिक चिख मारते हुए अचेत होकर पड जाते हैं। और रेबनी बिजली की तरह दौडते हुए भाग जाती है।

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ.५८, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण - १९८७.

बाहर उसकी माँ मिट्टी का तेल लेकर आती देखकर रेबनी उसे ऐसी चिपक जाती है कि उसे खड़ा रहना मुश्किल हो जाता है। जोर-जोर से सिसकती हुई बेटी का रूप देखकर वह सब समझ लेती है। छोटे मालिक के करतूतों को वह भली - भाँति जानती थी। इसी कारण उसका चेहरा सफेद पड जाता है। कुछ सोच नहीं पाती कि क्या करें और क्या नहीं। वह रेबनी को घर भेज देती है और दिग्मुढ बनकर वहीं खम्बे के सहारे खडी रहती है।

थोडी देर बाद छोटे मालिक अपने रौद्र रूप में रस्सी लेकर बाहर आते हैं और रेबनी की माँ को सामने देखकर लाते लगवाना शुरू कर देते हैं। फिर उसे रस्सी से खम्बे के साथ बाँधकर लाठी से पीटना शुरू करते हैं, परंतु रेबनी की माँ कुछ नहीं बोलती केवल रोती रहती है यह देखकर गुरति हुए कहते है -

" बोल साली, अपनी बेटी को यहाँ ले आयेगी कि नहीं ? बोल ---- " १

इस पर भी वह जबान नहीं खोलती इसलिए उसे और पिटते रहते हैं। परंतु रेबनी की माँ न कुछ जवाब देती है, न जान बचाने के लिए गिडगिडाती है। पिटाई सहते-सहते बेहोष हो जाती है तभी उसे छोड देते हैं। अपनी बेटी की इज्जत को आबाद रखने के लिए यातनाएँ सहती है परंतु अपनी बेटी को उस राक्षस के हवाले नहीं करती।

शाम होते ही बलचनमा जब घर आ जाता है तब घर की उदासी और माँ-बहन की वेदनाग्रस्त स्थिति देखकर चकित हो जाता है। इसपर उसकी माँ सिसकते हुए केवल इतना ही बताती है -

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ.५९, किताब महाल, इलाहाबाद - ३, नवाँ संस्करण - १९८७.

" बबुआ - बालचन ! मर जाना लाख गुना अच्छा है, मगर इज्जत का सौदा करना अच्छा नहीं। " १

इसी वक्त उसका मित्र चुन्नी आकर उसे खबर देता है कि छोटे मालिक के नौकर उसे ढूंढ रहे हैं इसलिए उसका घर रहना उचित नहीं है। क्यों कि मालिक उसपर चोरी का इल्जाम लगाकर पुलिस थाने में शिकायत की है। यह सुनते ही बलचनमा का होश उड जाता है।

चुन्नी उसे अपने घर ले जाता है, उसे सोच-समझकर काम लेने की सलाह देता है। चुन्नी उसे खाना खाने के लिए आग्रह करता है परंतु बलचनमा चिन्ता के मारे ठीक तरह से खाना भी नहीं खाता। रात में उसकी नींद उड जाती है, केवल सोच-विचार में फेरे लगाता रहता है। मन-ही-मन जोश के साथ मालिक को ललकारता है —

" बेशक। मैं गरीब हूँ। तेरे पास अपार सम्पदा है, कुल है, खानदान, बाप दादा का नाम है ----और मेरे पास कुछ नहीं। मगर आखरी दम तक मैं तेरे खिलाफ डटा रहूँगा। अपनी सारी ताकद को तेरे विरोध में लगा दूँगा। माँ और बहन को जहर दे दूँगा, लेकिन उन्हें तू अपनी रखेली बनाने का सपना पूरा न कर सकेगा ---- " २

[इ] <u>नारी शिक्षा समस्या -</u>

वैदिक काल में नारी को पुरुष के समान शिक्षा लेने का अधिकार था। इस काल में मैत्रेयी, गार्गेय, अदिती, आदि विदुषियों के उदाहरण दिखाई देते हैं। नारी शिक्षा का यह अधिकार परवर्ती काल में धीरे-धीरे छीन गया। मध्ययुगीन काल में नारी को "भोग्या" तथा "दासी" कहा जाने लगा। वैसेही उसपर धर्म के नाम पर पातिव्रत्य के जितने भी

---

१. नागार्जुन - बलचनमा-पृ.५९, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण १९८७.

२. ---- वहीं ----- पृ.६४.

बंधन लादे गये वैसे ही उसका शिक्षा लेना भी पाप कर्म माना जाने लगा, इसी कारण उसका जीवन बंधन और अज्ञान के साथ चार दीवारों में केवल बालबच्चों की निगरानी के लिए और रसोई घरके कामों में बंद होता गया। नारी के अज्ञान और आर्थिक परावलंबन के कारण उसका शोषण होने लगा।

समाज सुधारकों ने नारी जागरण, नारी स्वावलंबन तथा नारी शिक्षा के संबंध में कार्य करने के बावजूद भी आज हमारे समाज में लडकियों का पढना-लिखना उचित न माननेवालों की संख्या अधिक है।

नागार्जुनने मिथिला जनपद में व्याप्त रुढिवादिता और निर्धनता के कारण बना वेदनाग्रस्त नारी का जीवन देखा है, परखा है। इसी कारण वे नारी विकास के लिए नारी शिक्षा, नारी जागरण, नारी की आर्थिक स्वाधिनता को अनिवार्य मानते हैं। मिथिला उन्होंने अपने नारी पात्रों के माध्यम से नारी शिक्षा समस्या का यथार्थ चित्रण "उग्रतारा" और "पारो" इन उपन्यासों में प्रस्तुत किया है।

उग्रतारा -

इस उपन्यास में चित्रित तिवारी रतनपुर पुलिस थाने में सिपाही है। उन्हे दो लडकियाँ और एक लडका है। सबसे बडी बेटी गीता सातवे दर्जे तक पढी-लिखी है। वह आगे भी पढना चाहती है परंतु तिवारी की राय है कि लडकियों का ज्यादा पढना-लिखना उचित नहीं है क्योंकि उसे कहीं नौकरी नहीं करनी है। सत पढने-लिखनेके लिए सातवे दर्जे तक की शिक्षा काफी समझते है। यदि आगे भी पढती रहेगी तो लडका मिलना मुश्किल हो जायेगा। इससे यही अच्छा है कि उसकी पढाई यहीं बंद हो जाय। और गीता की पढाई बंद हो जाती है।

दो वर्ष तक वह घर में रसोई पकाना, घर सजना-सँवारना, छोटे भाई की देखभाल करना, बुनना आदि सीखने लगती है। इन कामोंसे उसे थोडा भी समय मिल जाता तो वह कुछ न कुछ पढती रहती है। कभी एकाद उपन्यास भी पढती है। उपन्यास पढते समय उसमें इतना मग्न हो जाती थी कि, घर का काम भी भूल जाती थी तब उसकी माँ उसे कोंसने लगती, "मेमसाहब" कहकर अपमानित करती थी। तो दूसरी तरफ उससे छोटी बहन उमा बर्तन माँजने में उसे थोडी भी देर हो जाती है तो कहने लगती -

" अब कैसी आई है। जाओ, बैठो पलंगपर, उपन्यास पढो। दाई-महरी का काम क्यों करने आयी हो ? " १

इस कारण उसका मन पढाई से विन्मुख हो जाता है। कुछदिनों बाद उसकी शादी छितौनी शुगर मिल में काम करनेवाले एक नवयुवक कलर्क के साथ हो जाती है। उसने भी कालेज तक की पढाई की है। वह अपनी नवेली पत्नी को आगे पढाना चाहता है परंतु उसके घरवाले अपनी नवेली बहु को इतने जल्दि उसके साथ मिल के क्वारटरों में भेजना नहीं चाहतें अत: वह अपने मायके में ही रहती है।

तीवारी के पडोस में रहनेवाले भभिखन सिंह की पत्नी उगनी अपनी लिखाई-पढाई तेज बनाने के लिए तिवारी की दूसरी बेटी उमा से पुस्तक और पेन्सील माँगकर आहिस्ता-आहिस्ता लिखती रहती है। उससे गीता का सहेलीपन निर्माण हो जाता है। वह गीता को पढने-लिखने के प्रति बढावा देने के लिए समझाती है - यदि यहाँ तुम्हे पिताजी पढने की इजाजत नहीं देते हैं तो तेरे पति की इच्छा है ही, तो जरुर पढना चाहिए। इसपर गीता कहती है -

---

१. नागार्जुन - उग्रतारा - पृ.६२, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, पेपर बॅक संस्करण - १९८७.

" चाची, जितना पढ लिया है, उतना ही काफी है। हजम हो तो थोडी भी विद्या कम नहीं होती। " १

तब उगनी उसे अपने नारी जाति के विकास के लिए शिक्षा आवश्यक है ऐसा कहती है क्यों कि -

" तीसरी आँख होती है विद्या, समझी ? " २

उगनी द्वारा दिया गया शिक्षा का समर्थन गौरा स्वीकार नहीं करती। पढाई बंद होने के बाद जो स्थिति उसने अनुभव की है उससे उसकी यही धारणा हो जाती है कि केवल घरेलु मामलों के लिए जितनी पढाई आवश्यक है वह तो हो चुकी है अब अपनी गृहस्थी का भार सम्हालना है, होनेवाले बालबच्चों की निगरानी करनी है। इसी कारण गौरा उगनी को कहती है -

" तिसरी आँख लेकर कोई क्या करेगा ? दो आँखे मिली हैं, वही क्या कम हैं ? ठिकाने से काम लो तो यही बहुत हैं ---- " ३

पारो -

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने नारी शिक्षा समस्या का भी चित्रण किया है।

उस उपन्यास की नायिका पारो पंडित पीसा की बेटी है। पंडित पीसा नारी शिक्षा के समर्थक और वेदकालीन गार्गेय-मैत्रयी जैसी विदुषी के महान प्रशंसक है, उन्हे सरोजनी नायडू, बिजया लक्ष्मी पंडित, कमलादेवी चट्टोपाध्याय आदि नारी रत्नों के प्रति आदर है और मिथिला के मण्डन मिश्र की महापण्डिता पत्नी भारती के प्रति अभिमान है। इसलिए

---

१. नागार्जुन-उग्रतारा-पृ. ४७, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, पेपरबॅक संस्करण - १९८७.

२. ----- वहीं ------- पृ. ४८

३. ----- वहीं ------- पृ. ४८.

वे अपनी बेटी पारो को खूब पढाना चाहते हैं। वह भी एक महान विदुषी बने ऐसी उनकी तमन्ना रहती है। इसलिए पारो को शब्दावली, धातुवली, अमर कोश, हितोपदेश, गोरखपुरवाली रामायण और गीता पठन तक की शिक्षा देते हैं। पारो भी शिक्षा लेने में अधिक दिलचस्पी लेने लगती है।

परंतु पारो की माँ प्रतिभामा सनातन विचारों की होने के कारण लडकियों का पढना-लिखना उचित नहीं समझती। लडकी को तो अपने पति के घर-गृहस्थी और बच्चों की निगरानी ही करनी चाहिए उसे तो ज्यादा शिक्षा की आवश्यकता ही नहीं है। उसे जनेहू के सूत कातने के लिए तकली चलाना, घर गृहस्थी के काम सीखना उचित मानती है। इसी कारण पारो का पढना-लिखना रुक जाता है। कुछ दिनों बाद उसके पिता की मृत्यु हो जाती है जिससे उसे पढना-लिखना रुक जाता है। कुछ दिनों बाद उसके पिता की मृत्यु हो जाती है जिससे उसे पढना-लिखना दुर्लभ हो जाता है। चौदह वर्ष की अवस्था में उसका विवाह एक पचास वर्षीय अधेड के साथ निश्चित किया जाता है। तब वह सोचती है कि यदि पीता जीवित होते तो न शिक्षा बंद हो जाती, न एक अधेड के साथ विवाह होने देते। यह खता उसे नोचती रहती है। एक दिन उसका ममेरा भाई बिरजू घर आता है तब वह उसकी पढाई-लिखाई की स्थिति के बारे में पुछता है तो पारो रुखे शब्दों में केवल इतना ही कहती है -

" दैव ने ही छुडा लिया ---- " १

इस उत्तर से बिरजू सोचने लगता है कि पारो दिन बदिन उग्र स्वभाव की क्यों बनती जा रही है। बचपन में कितनी मधुर बाते करती थी, कैसे तुकबंदी की शर्त लगाती थी।

---

१. नागार्जुन - पारो-पृ.४०, यात्री प्रकाशन, दिल्ली-९४, संस्करण-१९८७.

शादी के बाद भी जब कभी समय प्राप्त होता तो कुछ न कुछ पढ़ती रहती है परंतु उसके पति को उसका पढ़ना अच्छा नहीं लगता। साथही पति के निष्ठुर और अत्याचारी वृति से पारो मन ही मन टूटती जाती है। अपना दिल बहलाने के लिए जो कुछ भी मिलता है, अवकाश के काल में चोरी छिपे पढ़ती रहती है। एक दिन वह शरद् बाबू के बंगाली उपन्यास " चरित्रहीन " का हिन्दी अनुवाद पढ़ रही थी इतने में बिरजू भैया उसके घर आता है। उसके हाथ में उपन्यास देखकर उसे आश्चर्य लगता है कि " गीता " के बदले पारो " चरित्रहीन " उपन्यास कैसे पढ़ रही है। इसपर वह पारो से पुछता है तब कहती है -

" क्यों, यह जहर है और गीता अमृत ? ---- क्या सोचते हैं कि उपन्यास पढ़कर मैं भी चरित्रहीन हो जाऊँगी ? " १

उसकी बाते सुनकर वह समझ लेता है कि उसकी माँ की सनातन वृत्ती के कारणही उसकी पढ़ाई बंद हो गयी है, पति मिला है वह भी अधेड और अत्याचारी। इसी बात के कारण अक्सर पारो क्रोधित होती रहती है। यदि पारो के पिता होते तो वह अपनी इच्छा के अनुसार पढ़ती और न ऐसा अनिच्छा पूर्ण विवाह होता। वह मन में निश्चय कर देता है कि अगली बार जब आऊँगा तब उसे पढ़ने के लिए जरुर कुछ अच्छे उपन्यास लाऊँगा।

बहुत दिनों बाद जब वह फिर पारो को मिलने आता है तब उपन्यास लाना भूल जाता है। वह आते ही पारो पुछने लगती है -

" कोई किताब नहीं लाये मेरे लिए ? --- गाँव से तय कर आप नहीं ही चले होंगे। क्या है, मेरा क्या ? महाभारत का बड़ा-सा पोथा

---

१. नागार्जुन - पारो - पृ.५२-५३, यात्री प्रकाशन, दिल्ली-९४, संस्करण - १९८७.

पड़ा ही है। छुट्टी मिले तो उससे भी मन बहला लूँ। " १

पारो ममेरे भाई बिरजू से नाराज हो जाती है। अपने मन को कोसती है। अब पढ़ाई पर अधिक रंज न करने का निश्चय कर देती है। -माँ, पति और अब बिरजू भैया भी अपनी पढ़ाई का विरोध कर रहे हैं। यदि पिता होते तो न यह पढ़ाई की मनाई होती और न यह शादी होती। इस खता में ही वह जीने लगती है। कुछ दिनों बाद प्रसुती में ही उसकी मृत्यु हो जाती है।

इससे स्पष्ट होता है कि नारी शिक्षा के प्रति होनेवाले सनातन विचार और मान्यताओं के कारण ही पारो जीवन भर पढ़ाई लिखाई के नामपर दु:खी होती रही। यह पढ़ाई उसके मन को राहत देती थी। परंतु उसकी इच्छा अधूरी रह जाती है।

---

१. नागार्जुन - पारो - पृ. ६७, यात्री प्रकाशन, नयी दिल्ली-९४, संस्करण - १९८७.

अध्याय - पाँचवा

नागार्जुन के आँचलिक उपन्यासों में ग्राम जीवन की समस्याएँ।

वैदिक काल से ब्रिटीश काल तक भारतीय ग्राम अपने आप में स्वयंपूर्ण थे, जिससे ग्रामों के संगठन और शासन की शक्ति पर देश को स्वर्णकाल कहने का गौरव प्राप्त हुआ था। अपनी सभ्यता और संस्कृति पर गर्व करनेवाला भारत इन ग्रामों में ही बसा हुआ है।

जिस देश के मानवधर्म और मानवीय आदर्श प्राप्त करने की चेष्टा संपूर्ण संसार में हो रही है, वही देश अंग्रेजों के शासन काल. में अपनी इस अधोगति को प्राप्त होकर सभ्यता और संस्कृति के नाम पर केवल खंडहर बन गया। अंग्रेजों की शोषण नीति और व्यापार वृति के कारण तथा बाद में औद्योगिक क्रांति के कारण भारतीय देहातों के कुटिरोद्योग तथा कृषि प्रधानता नष्ट होती गयी। इसी कारण ग्रामीण किसान वर्ग निर्धन बनता गया। इस कालमें जमींदारी और महाजनी प्रथा शुरु हो गयी। जमींदार और महाजन सामान्य किसानों का अनावरत शोषण करने लगे। जिससे किसानों को कर्ज में ही जन्म लेना, कर्ज में ही रहना और कर्ज में ही मरना क्रम प्राप्त हो गया।

तो दुसरी ओर धर्म मार्तंडोंने धर्म के नामपर वर्णाश्रम गत अनेक कडे नियम किये जिससे छुआछूत की समस्या निर्माण हो गयी। इसके साथ ही परंपरा, रुढियाँ तथा रीति रीवाज के नामपर सामान्य लोगों के मन में अनेक अंध विश्वास तथा अंधश्रध्दा निर्माण करते हुए शोषण और अत्याचार किये गये। जिससे ग्रामीण समाज में सामाजिक, धार्मिक, तथा आर्थिक समस्याओं के कारण अज्ञान और अनिष्ट रुढियों के कारण तथा धर्म पाखण्डता के

कारण भारतीय ग्राम समस्याओं से ग्रस्त हो गया।

नागार्जुन ने अपनी पैनी दृष्टिसे गाँवों के सामान्य जनों की गरिबी की दुर्दशा, जमींदारों तथा महाजनों का शोषण और अत्याचार तथा धर्ममार्तंडों के द्वारा निर्मित अंधविश्वास, अंधश्रध्दा ओं का सूक्ष्म निरीक्षण करके होनेवाले शोषण को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

अ] आर्थिक समस्या –

"अर्थ" प्रारंभ से ही जीवन का विधायक तत्व रहा है। भारत एक कृषी प्रधान देश है। भारतीय किसान रात दिन पसीना बहाकर भी वह केवल मजदूर बना रहा है, उसे दो वक्त का खाना भी प्राप्त नहीं हो सकता। ब्रिटीश कालमें जमींदार ही खेत के मालिक बन बैठे थे। जमींदारी के साथ-साथ महाजनी के माध्यम से भी किसानों का शोषण और अत्याचार शुरु हुआ। गाँव के छोटे-मोटे बनिये और सूदखोर महाजनों ने भी किसानों को अपने ऋण में उलझा रखे। उनके घर-द्वार नीलाम कर उन्हे निराधार मजदूर बना दिया।

पंडित-पुरोहितों ने भी किसानों के अज्ञान और निर्धनता का लाभ अनेक त्यौहार, विवाह विधी, पूजा-अर्चा, प्रायश्चित, अंधविश्वास, अंधश्रध्दा जैसी विसंगतियों के आधार पर उठाया, जिससे किसानों की आर्थिक स्थिती को और खोखला बना दिया। इसके साथ ही प्रकृति का प्रकोप जैसे भूकम्प, बाढ़ अकाल, बीमारी आदि के कारण भी किसानों की आर्थिक स्थिति दयनीय बनती गयी।

वस्तुत:समुचित शिक्षा, चिकित्सा एवं स्वस्थ मनोरंजन व्यक्तित्व विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है परंतु ग्राम जीवन में इनका अभाव रहा है। जिससे ग्राम का सामान्य जन हमेशा अपनी निरिहता खोकर दयनीय

जीवन व्यतीत करता रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में ग्राम विकास की अनेक योजनाएँ बनाई गई है। परंतु नौकरशाही और भ्रष्टाचार के कारण ये योजनाएँ सामान्य जनोंतक पूर्ण रूप से नहीं पहुँच गयी।

नागार्जुन ने इसका भी चित्रण "बलचनमा" और "बाबा बटेसरनाथ" इस उपन्यास में किया है।

बलचनमा –

बलचनमा में उपन्यासकारने गरीब किसानों के उपर जमींदारों व्दारा किया जाने वाला अत्याचार का चित्रण भी मिलता है।

इस उपन्यास का नायक बलचनमा ग्वाला जाति का है। उसके परिवार में उसके पिता, माँ, दादी और एक छोटी बहन है। वे सभी जमींदारों के यहाँ दिनरात कष्ट करते हैं और बदले में जो कुछ मिलता है उसीपर गुजारा करते हैं। वैसे तो बलचनमा के परदादा से उनका घराना जमींदारों के यहाँ काम करता आ रहा है। उस के परदादा को तत्कालीन प्रथा के अनुसार एक जमींदार ने अपनी बेटी के दहेज में दास के रूप में दे डाला था, जिससे बलचनमा के पूर्वज सात पीढियों से निरंतर जमींदारों के अन्याय का शिकार होते आये हैं। वंश परंपरा से दास्यत्व करते-करते उसके पिता, दादी और माँ के स्वभाव में भी इतनी दासता आती है कि अत्याचार सहने की उन्हें आदत सी पड जाती है। आर्थिक विवशता के कारण दासता और अत्याचार सहकर भी खुशामद करना पडता है।

जब बलचनमा चौदह वर्ष का हो जाता है तब एक ऐसी घटना घटित होती है कि, मंझले मालिक के कलम-आम बाग के पास कोई नहीं देखकर उसका बाप एक आम चुराकर लाता है और वही कुठिया में बैठकर

छिलके निकालने लगता है तब उसे एक आदमी देखता है और मालिक के पास चुगली करता है। मालीक को मालुम होते ही उसे बुलाया जाता है। वह हवेली में आते ही उसे रसीके सहारे खंबेपर बांध दिया जाता है। और नौकरों की सहायतासे मारपीट किया जाता है। उसे इतना मारा जाता है कि उसकी खाल उखड जाती है। उसके होंठ सूख जाते है। उसकी हालत देखाकर बलचनमा की दादी अपने थरथराते हुए हाथों से मँझले मालिक के पैर पकड लेती है, और फूट-फूट कर रोते हुए गिडगिडाती है -

"दुहाई सरकार की, मर जायगा ललुआ! छोड दीजिए सरकार! अब कभी ऐसा न करेगा, दुहाई मालिक की। दुहाई माँ बाप की .." [१]

तो बलचनमा की माँ रास्ते पर बैठकर हाय-हाय करते हुए रोने लगती है, भय के मारे उसकी बहन केवल देखती रहती है। बलचनमा भी फूट-फूट कर रोते हुए देखता रहता है। मार पीट के बाद कुछ दिनों तक उसका बाप तेज बुखार से बीमार हो जाता है और इसी बुखार में उसके क्रिया-कर्म के लिए बलचनमा की माँ और दादी मंझले मालिक से ही मिन्नते करके बारह रुपये सूद पर लेती है और कोरे कागज पर अंगुठे का निशान देती है। इस पर सूद देते-देते बचलनमा की माँ थक जाती है परंतु मूल ज्यों का त्यों ही रह जाता है।

बाप के मरने के बाद गृहस्थी चलाने के लिए उसकी माँ बलचनमा को छोटे मालिक के यहाँ चरवाहे के काम पर रखना चाहती है परंतु दादी वह अभी बच्चा होनेके कारण न चाहते हुए भी बलचनमा की माँ की इच्छा के खातीर वह छोटी मालकिन के पास उसे चरवाहे का काम देने के लिए मिन्नते

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. ३, किताब महल, इलाहाबाद-३,
नवाँ संस्करण - १९८७.

करती है, गिडगिडाती है, इतना होने पर भी मालकिन जब राजी नहीं होती तो उसके पैर पकडकर कहने लगती है -

"नही' मालिकाइन, ऐसी बात न कहिए। मेरा बालचन मुट्ठी भर से अधिक भात नहीं खाता। कोदो, मडुआ, मकई, सौंवाँ, कौंवन, चाहे जिसकी भी रोटी दे दो, खुशी-खुशी खा लेगा और दो चुल्लू पानी पीकर सन्तोख की सौंस लेता उठ जायेगा, बडा ही सुभर है, तनिक भी नहीं खेलेगा, मालिकाईन! .. आप ही का तो आसरा है, नहीं तो हम गरीब जनमते ही बच्चों को नमक न चटा दें! अरे, अपना जूठन खिलाकर, अपना फेरन-फारन पहना कर ही तो हमारा पर्तपाल करती हैं ... आज से आप ही इस निभागे की मौं-बाप हुई गिरहथनी! आपका जूठन खाकर इसका भाग चमकेगा ..."[१]

तब मालकिन बलचनमा को दो आणे महिना और खाना-कपडा देने पर राजी हो जाती है।

इसके बदले में उस भैंस चराना, उसका बथान साफ करना, घास लाना, दुकान से कुछ न कुछ खरीदकर ले आना, झाडू लगाना, मालकिन के हमेशा रोनेवाले बच्चे को सम्हालना, रात में मंझले मालिक की मालिश करना, छोटे मालिक जब छुट्टी समाप्त करके नौकरी पर वापस जाते हैं। तब उनका सामान सिर पर ढो कर मधुबनी स्टेशन तक पहुँचाना आदि काम करने पडते हैं। इतने ढेर सारे काम करते समय यदि भूल हो जाती या कभी घास लाने में देर हो जाती है, या बच्चे को घण्टोंतक इधर उधर घुमाकर भी उसका रोना बंद नहीं हो पाता, तो मालकिन बलचनमा का कान पकडकर उसे कोढिया, गदहा, सुअर, कुत्ता, उल्लू, कलमुहाँ आदि गालियाँ देकर

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ.४, किताब महल, इलाहाबाद - ३, नवाँ संस्करण - १९८७.

उसका उध्दार करने लगती। तो कभी..कभी झाडूसे पीटती भी है। इतना सारा काम करने पर छोटी मालकिन उसे खाने के लिए कलवा की बासी रोटी या मडुआ की रोटी और नोन पर सरसो का तेल देती। कभी कभी मालकिन खुश हो जाती है तो बासी या सुखा पकवान, सडा आम, बदबुदार छेना या जूठन की बची कडवी तरकारी, बदबुदार दही देती हैं। बलचनमा उसे बडी खुशी के साथ खाता रहता था। एकाद समय दही इतना बदबुदार और खट्टा होता था कि उसे खाया नहीं जाता था, तब मालकिन उसे गालियाँ देने लगती और दूसरे वक्त का खाना भी बंद कर देती थी ।

मालिक के घर मेहमान आना बलचनमा के लिए आनंद की घटना थी। उन्हे अच्छे-अच्छे पकवान खिलाए जाते थे जिससे बलचनमा को स्वादिष्ट जूठन मिलता था। ऐसे समय वह चोरी छिपे जूठन ले जाया करता था और अपनी दादी, माँ और बहन को खिलाता था।

जब उसके घर में खाने को कुछ नहीं रहता तब उसकी दादी बडे तडके उठकर मालिक के बाग से कुछ फल या गन्ना इतनी खुबी से चुरा लाती थी कि, इसका शक भी किसीसे नहीं होता था। यह काम बलचनमा की माँ से नहीं होता था। जाडे की रात तो उसके लिए प्रलय की रात लगती है। फटी पुरानी कथरी या गुदडी में जब उनको सोना बहुत मुश्किल हो जाता था, तब बकरियों की सुखी मेंगणियाँ तपा-तपाकर रात काटना पडता था। मालिक के यहाँ लकडी की कमी नहीं थी परंतु भय के मारे नहीं उठाते। इन्हीं दिनों मालिक के खेत में गन्ने का कोल्हू चलाया जाता तब बलचनमा और उसकी बहन रात में चोरी-छिपे कोल्हू की आड में बैठकर पेट भर गन्ना खाते थे।

बलचनमा का थोडासा खेत भी था परंतु उसमें केवल मडुंआ की उपज होती थी, जो दो-तीन महिने तक गृहस्थी चलाने में काम आती थी। यह खेत मंझले मालिक के कलम-आम बाग के पडोस में था अत: उसपर उनकी नजर थी।

एक दिन मंझले मालिक बलचनमा, उसकी माँ और दादी को हवेली पर बुला लेते हैं और मीठी वाणी में बलचनमा की माँ को कहने लगते हैं -

"बलचनमा की माँ! तुम्हे तो याद होगा, बेर-बखत में हम कभी पीछे नहीं रहे। दो की जरुरत पडी तो तुम्हे चार दिये, पाँच की जरुरत पडी तो तुम्हे दस दिये। जैसे अपने परिवार के प्राणी हैं, तुम लोगों को हमने वैसा ही समझा। हाँ काम-काज की भीड रहती है .. कभी-कभी तुम्हारी बात पर ध्यान नहीं भी जाता है, मानता हूँ, मगर महतो और बहिया [स्वामी और दास] आखिर बाप-बेटे ही तो होते है। दूसरा काम नहीं आता है। .. .. तुम्हारे दिन, बलचनमा की माँ, अब लौटने ही वाले हैं। बडा कामसुत निकलेगा बेटा। अपने बाप का नाम उजागर करेगा। भगवान करेंगे, तुम्हारे सारे मनोरथ पूरे होंगे। बाकी, थोडा दिन और धीरज से काम लो .."[१]

मालिक की बात बलचनमा की माँ और दादी की समझ में ठीक तरह से नहीं आती। यह देखकर मँझले मालिक के पास बैठे पंडित जी मालिक की बात को बढावा देते हुए कहते हैं -

"जो बहिया [गुलाम] महतो [मालिक] को प्रसन्न रखता है, उसके लिए स्वर्ग में अमृत की धार बहती है। .. मिट्टी का ठहरा शरीर, गिरता

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. ११, किताब महल, इलाहाबाद - ३, नवाँ संस्करण - १९८७.

है तो खाक हो जाता है। समझदार वही है जो इस चोले को पाकर कुछ कर जाता है .. मान लीजिये, आप को बित्ता आध बित्ता जमीन की जरुरत है और बलचनमा की माँ उतनी जमीन आपको दे देती है तो होता है क्या ? " १

यह सुनते ही बलचनमा, उसकी माँ और दादी चकित होकर एक दूसरे की ओर देखते हैं। तब दादी भर्राए हुए आवाज में मालिक के पैर पकडकर गिडगिडाती हुई कहने लगती है -

"नहीं सरकार, ललुआ की कमाई की निशानी है वह खेत। उसे न छीनें। क्या कमी हैं आप को .." २

इसपर मालिक उसे पैरों से दूर हटाते हुए बलचनमा की माँ को दुबारा मीठी वाणी में कहते हैं कि, खेत नहीं देना है तो रहने दो, मगर गृहस्थी के लिए, मजदूरी के लिए, हल-बैल के लिए पैसों की जितनी रकम चाहिए उतनी ले जाना और इस कागज पर केवल अंगूठे का एक निशान लगवाना। भगवान जो करता है अच्छा ही करता है। मालिक की बात सुनकर बलचनमा मन ही मन गुस्सा करने लगता है और सोचने लगता है -

"अच्छा तो भगवान करते ही है। ? चार परानी का परिवार छोडकर मेरा बाप मर गया, यह भी भगवान ने ठीक ही किया। भूख के मारे दादी और माँ आम की गुठलियों का गूदा चूर-चूरकर फाँकती थी, यह भी भगवान ठीक ही करते थे। और मालिक लोग कनकजीर और तुलसीफूल के खुशबूदार भात, अरहर की दाल, परबल की तरकारी, घी, दही, चटनी खाते थे,

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. ११, किताब महल, इलाहाबाद - ३, नवाँ संस्करण - १९८७.

२. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. १२, किताब महल, इलाहाबाद - ३, नवाँ संस्करण - १९८७.

सो यह भी भगवान की लीला थी। चौकोर कलम-बाग के लिए उनको हमारा दो कट्ठा खेत चाहिए था और हमें चाहिए अपने चौकोर पेट के लिए मुट्ठी भर दाना।" [१]

उस दिन तो बलचनमा की माँ मंझले मालिक के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती परंतु बाद में वह बाप के क्रिया-कर्म के कर्ज के नामपर मँझले मालिक के नामपर ही हो जाती है।

बलचनमा की दादी को पहले से ही दमे की बीमारी थी, समय पर ठीक से खाना नहीं मिलता था जिसके कारण वह बीमार हो जाती है। उसे दवा लाने के लिए जब बलचनमा गाँव के बूढे वैद्य के यहाँ जाता है तब वैद्य उससे दोपहर तक अनाज भरने का काम करवा लेता है और बाद में दवे की तीन पुडियाँ देता है। बिमारी के कारण दादी को रोटी हजम नहीं होती थी इसलिए उसे भात खाना आवश्यक हो जाता है। बलचनमा की माँ मँझली मालकिन और छोटी मालकिन के यहाँ दो मुट्ठी चावल माँगने जाती है परन्तु न मिलने के कारण बलचनमा रात में मँझले मालिक की मालिश करने जाता है। बहुत देर तक मालिश करने के बाद मालिक खुश हो जाते हैं। तब बलचनमा गिडगिडाते हुए दो मुट्ठी चावल की माँग करता है। और तब कहीं उसे मुट्ठी कर चावल मिल जाते है, एक दिन "पोठी" मछली का भूर्ता खाने की इच्छा दादी व्यक्त करती है, तब बलचनमा दोपहर के समय मालिक के पोखर पर चोरी-छिपे जाता है, और गुलेर के एक पेडपर छिपकर बैठ जाता है। मछली पकडने के लिए काँटेवाली डोरी पानी में फेंक देता है। बहुत देर के बाद उसे एक "टेंगरा" मछली मिल जाती है। यह भी कुछ कम नहीं है यह सोचकर घर ले आता है। जब उसकी माँ मछली आग में भून ने लगती है, तब मछली के गंध फैलने लगती है। इसी समय छोटी मालकिन की नौकरानी

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. १३, किताब महल, इलाहाबाद - ३, नवाँ संस्करण - १९८७.

सुखिया बलचनमा को बुलाने आती है। मछली की गंध से वह भी लालाईत हो जाती है परंतु कुछ नहीं बोलती। परन्तु वह छोटी मालकीन के पास आकर चुगली कर देती है। जिससे छोटी मालकीन उसे गालियाँ देते हुए आधी-जली हुई लकडी से दाग देती है, मारपीट करती है। बलचनमा तिलमिला उठता है परंतु कुछ नहीं बोलता। इस के दो दिन बाद उसकी दादी मर जाती है।

एक दिन छोटी मालकिन का भतीजा फूल बाबू आ जाता है, वह पटना में वकालत की पढाई कर रहा था। जब वह बलचनमा को काम करते हुए देखता है तब उसके पास आकर उसे अपने साथ चलने के लिए कहता है। वह उसे पटना में उसकी हिफाजत करने, बरतन माँजने, झाडू लगाने, रसोई तथा घर के काम करने के लिए ले जाना चाहता था। यह सुनकर बलचनमा का चेहरा खिल उठता है परंतु छोटी मालकिन और उसकी माँ की इजाजत लेने की जिम्मेदारी फूल बाबू पर छोड देता है। फूल बाबू उसकी फूफी और बलचनमा की माँ की इजाजत लेकर उसे पटना ले जाता है। तभी बलचनमा को अत्याचारों से छुट्टी हो जाती है।

बलचनमा के अतिरिक्त समस्तीपुर के अन्य मजदूरों की भी आर्थिक दयनीयता इसी तरह दिखाई देती है। इन मजदूरों को भादो, आसिन, कातिक और आधा अगहन - के इस साढे तीन महिने के काल में कोई काम नहीं मिलता तब मजदूरी के लिए कोई पूरब की ओर सिलीगुडी, दिनाजपुर, ढाका की ओर चला जाता है, कोई कलकते की तरफ कोई घर बैठे-बैठे घास की चटई बुनता है कोई मछली पकडने की काँटेवाली डोरी बनाता है कोई गाँजा तैयार करता रहता है। इससे प्राप्त होनेवाली आमदनी पर उसे गुजारा करना पडता।

प्राकृतिक प्रकोप के कारण भी किसान मजदूरों की आर्थिक स्थिति दयनीय हो जाती है। १९३४ में समस्तीपुर, महापुरा, सीतामढ़ी, मधुबनी, मुंगेर आदि गाँवों में भूचाल आ जाता है। जिससे लोगों के मकान, जमींदारों की हवेलियाँ, सरकारी थाना, जेल, कचहरी, अस्पताल, मंदिर आदि इमारतें गिर जाती हैं। अनेक लोग मर जाते है। भूचाल से सडक में दरार पड जाती है, रेल की पटरी उखड जाती है जिससे यातायात बंद हो जाता है। लोगों को खाने के लिए कुछ नहीं मिलता, मकान बांधने के लिए सामान्य जनों के हाथ में पैसा नहीं होता, उन्हे मजदूरी भी ठीक से नहीं मिलती। भूचाल के कारण पीने का पानी भी दुर्गंध युक्त बन जाता है। ऐसी स्थिति में देर से ब्रिटीश सरकार और काँग्रेस पार्टी राहत कार्य शुरु कर देते हैं। कुएँ खुदवाने के काम शुरु किये जाते हैं। काँग्रेसकी ओर से फूल बाबू क्षतीग्रस्त लोगों को पैसे बाँटने का काम करते हैं। पीछे से छोटे मालिक के मुंशीसे पता चलता है कि फूल बाबूने कुँए खुदवाने के काम में एक हजार की रकम हडप की। अंगुठे के निशान लिये थे और उससे कम रकम दी थी। इस कार्य में पाँच सौ तक रकम हडप की थी। इसपर समस्तीपुर की विधवा कुन्ती जुगल बलचनमा से कहती है -

"बबुआ बालो, भुइकंप यह क्या हुआ, बडे लोगों के लिए आमदनी का एगो अउर रास्ता निकल आया .." [१]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि जमींदार केवल निर्धन लोगों पर, ही नहीं बल्कि काँग्रेस पर भी अपना दबाव रखकर अपनी शोषण नीति को आबाद रखते थे। जिससे सामान्य जनों की आर्थिक दयनीयता उन्हें जीना दुभर कर देती थी।

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ.१२२, किताब महल, इलाहाबाद - ३, नवाँ संस्करण - १९८७.

बाबा बटेसरनाथ -

इस उपन्यास में उपन्यासकार ने रूपउली गाँव की आर्थिक स्थिति का चित्रण भी प्रस्तुत किया है।

रूपउली गाँव में कुल तीन सौ परिवार थे और वहाँ की जनसंख्या ढाई हजार तक थी। यहाँ ब्राहमण, राजपूत, खेतीदार, ग्वाला, अहिर, पासी, धानुक, चमार, मोमीन आदि जाति के लोग रहते थे। बडी जातवालों के पास निर्वाह के योग्य जमीनें थी। लेकिन इस गाँव के साठ प्रतिशत परिवार ऐसे थे कि, जिनका गुजारा मजदूरी पर ही निर्भर था। ये मजदूर लोग मजदूरी के लिए पडोस के कई गाँवों में जाया करते थे। कोई सकरी गाँव के रेल स्टेशन पर कुली का काम करता था, तो कुछ लोग इस गाँव से पन्द्रह कोस दूरी पर स्थित चीनीके कारखाने में गन्ने की कटाई के काम पर जाते थे। बाकी लोग वहाँ के टुनाई पाठक और जयनारायन आदि के खेत पर मजदूरी करते थे।

आर्थिक दैन्यावस्था में जीनेवाले इन सामान्य लोगों को केवल मजदूरी की ही फिक्र नहीं रहती थी बल्कि प्राकृतिक प्रकोप का भी डर रहता था।

हिजरी सन १२८० में रूपउली गाँवमें समयपर वर्षा न होने के कारण किसान चिन्तीत होने लगे अन्य लोग भी बरसात के प्रति आशंकित होकर देवी-देवताओं की पूजा-अर्चा, पारायण, अनुष्ठान करना, पशु बलि देना आदि के माध्यम से ईश्वर की आराधना करने लगे। इतना करने पर भी वर्षा नहीं आयी। जैसेही दिन बीत जाने लगे वैसे तालाबों, नदियों का पानी घटने लगा, घर का अनाज समाप्त होता चला। अकाल की भीषणाता बढने लगी। लोग पहले तालाब की मछली और कछुओं को भूनकर बिना नमक लगाये ही खाते रहे। परंतु तालाब के मालिकोंने तालाबों पर पहरा लगाया जिससे लोग अधिक चिन्ताक्रांत होते रहे।

इस गाँव में राम मंदिर बनवाने के लिए ईंटों के ठेले लगाए गये थे। अकाल की भीषणता के कारण लोग पेट की आग बुझाने के लिए ईंट चुराकर लाते थे और घर की स्त्रियाँ ईंट का महिन चूर्ण, आम की गुठलियों का चूर्ण, आम, जामून, अमरूद आदि पत्तों को उबालकर इन सबका मिश्रण कर लेती थी और खाने में दिया करती थी।

अकाल के कारण घास भी सुख गया था, इसलिए घास की जडे उबालकर चबायी जाती थी। कोई पेडों के छाल खरोंच लाता और उबालकर चबाता था। तो कुछ लोग बरगद के छोटे-छोटे दध्दि फल खाते थे। ऐसी दयनीय हालत में लोग गाँव छोडकर जाने लगे। कुछ जवान अंग्रेज फौज में भर्ती हो गये। इस काल में अंग्रेज सरकारने अकाल ग्रस्त लोगों के लिए राहत कार्य शुरु किया परंतु गाँव के जमींदारों के सरकारी अधिकारियों से संबध होने के कारण अकाल ग्रस्तों की राहत में जमींदारों ने अपना उल्लू सिधा करना शुरु किया जिससे सामान्य लोगों को कुछ भी नहीं मिला।

अकाल पीडित कुछ लोग वलसिंग सराय गाँव गये। वहाँ नयी रेल लाईन बनवानेका काम चल रहा था। यहाँ हजारों मजदूर दो पैसे, एक आना मजदूरी पर काम करने लगे। यहाँ कम से कम मजदूरी में जादा से जादा काम लिया जाता था। जिससे अकाल पीडित लोग भूख मरी के शिकार बन गए।

रुपडली गाँव मे तो भूख मरी के कारण लोगों का बहुत बुरा हाल हो रहा था। मरनेवालों की संख्या बढने लगी थी। पहले-पहले काठ की लकडी में लाशें जलाते थे परंतु बाद में मैदान में गाडने लगे, जब यह भी असंभव हो गया तो मैदान में लाशें फेंकने लगे। जिससे गिध, कौओ, भेडिए, कुत्ते आदि गाँव में भीड करने लगे, लाशों की दुर्गंध फैलने लगी। मरनेवालों में बच्चे और वृध्द व्यक्तियों की काफी संख्या थी। अकाल की यह भीषण स्थिति डेढ साल तक चलती रही।

बाद में धीरे-धीरे इस स्थिति में सुधार होता गया। बरसात होने लगी, खेत खलिहन लहराने लगे। लोगों को गाँव में ही मजदूरी और अनाज मिलने लगा। परंतु अधिक बरसात होने पर कमला, जीबछ, कोसी जैसी नदियों को, छोटे-छोटे नालें तथा तालाबों को भी बाढ आने के कारण फिर होगों का जीवन व्यस्त हो गया।

एक बार आसाढ महिने में ऐसी भयानक बाढ आ गयी कि जिससे पूरा इलाका डुब गया। इस बाढ में लहेरिया-सराय, दरभंगा, सुपौल, मधेपुरा आदि गाँवों की बस्तियाँ, खेत खलिहन डुब गये, रेल लाईन भी डुब गई। रूपउली गाँव अन्य गाँवोंसे काफी उँचाई पर था फिर भी गाँव में पानी आ गया जिससे लोगों में हाहाकार मच गया। गाँव के लोग जितना हो सके उतना अधिक बोझ लेकर भागने लगे लेकिन गाँव छोडना मुश्किल हो गया। अत: कुछ लोग बाबा बटेसर के वृक्षपर मचान बांधकर रहने लगे, कुछ लोग अन्य वृक्षों पर बैठ गए, तो कुछ लोग दुमंजले घरों की छतोंपर बैठ गये। बाढ ग्रस्त लोगों को खाना मिलना असम्भव हो गया। पीने के लिए पानी भी नहीं मिल सका। इस काल में लोगा पेडपर रहनेवाली छिपकलियाँ, गिलहरियाँ, चिडियाँ तथा कीडे-मकौडे खाना शुरु किया। घर के छत पर बैठे लोगों के पास जो थोडा चावल, मसूर, आदि था, वह बाढ के पानी में भीगोकर खाने लगे, और बाढ का पानी पीने लगे। जिससे पेट की बीमारी होने लगी, दवादारु की ठीक व्यवस्था न होने के कारण लोग मरने लगे।

बाढ के कारण पेडपर साँप भी आये जिससे कुछ लोग सर्प दंश से मर गये, इन मृत लोगों की क्रिया-कर्म की व्यवस्था करना कठिन बन गया, अत: उन्हें बाढ में ही फेंकना अनिवार्य हो गया। इस बाढ में गाय, बैल, भैंस बकरियाँ आदि के मुर्दे तैरने लगे। मजदूरों का बहुत बुरा हाल हो गया, वे लोग भूखमरी की शिकार हो गए।

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR

बाढ़ की भीषणाता पंन्द्रह दिनों तक चलती रही उस के बाद धीरे-धीरे ढीली पड गयी। लोग अपने-अपने घर पहुँचने लगे परंतु बाढ़ के कारण भीगी हुई जमीन और दीवारों की बदबू, दुर्गंध युक्त पानी और भीगी हुआ अनाज खानेसे तथा खुली हवा के अभाव में मलेरिया की बिमारी फैल गयी। खेत खलिहन की फसल बर्बाद हो गयी। बाजार में मकई, मडुआ, सँावा-कावन आदि के मोल भाव बढ गये। खेत गिले रहने के कारण लोगों को मजदूरी नहीं मिल सकी। मलेरिया की बीमारी पर विलायती दवा लेने में पण्डितों ने हरकत उठाई। जिससे लोगों की स्थिति दयनीय बन गयी।

ब] छुआछूत की समस्या -

प्राचीन काल से वर्ण व्यवस्था हिंदु समाज की आधारशीला रही है, इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि, समाज की सर्वाधिक सेवा करनेवाला वर्ग पिसता रहा तथा उसे अछूत समझा जाने लगा। समाज पति-यों ने अछूतों को मानवीय अधिकारों से वंचित कर दिया। अछूत के साथ बैठकर भोजन करना तो दूर ही रहा, उनके स्पर्श को भी पाप या अपवित्र माना जाने लगा। मंदिर मे उनका प्रवेश भी निषिध्द हो गया। उन्हे गाँव के बाहर निर्जन स्थानपर रहने के लिए बाध्य बना दिया।

इसका चित्रण भी नागार्जुन ने अपने "रतिनाथ की चाची" और "बलचनमा" इन उपन्यासो में किया है।

रतिनाथ की चाची -

इस उपन्यास में चित्रित कुल्ली राउत, जो खवास जाति का है। उसके परदादा को रतिनाथ के परदादा ने सात रूपये में खरीद लिया था। तभी से कुल्ली राउत तक की सभी पीढियाँ शुभंकरपुर के उपाध्याय के घर में सेवक का काम कर रही हैं। कुल्ली राउत अपने परिवार सहित रतिनाथ के घर की सेवा करता है। बचपन से ही वह रतिनाथ के घर सेवा करते रहने के कारण उनके घर के संस्कारों से का प्रभावित उसपर हो जाता है। उसके रहन - सहन और बोलचाल देखकर अपरिचित व्यक्ति उसे उच्च जाति का ही समझ लेते थे। कुल्ली ब्राहमण की सेवा करते-करते उस घर में चलनेवाले धार्मिक विधि तथा पूजा-पाठ को भी सीख लेता है। जनेहू मंत्र, गायत्री स्तोत्र तथा संस्कृत के अन्य स्तोत्रों को भली भाँति जानने लगता है। कुल्ली राउत शुद्र होते हुए भी गायत्री के कुछ स्तोत्र सीख लेता है। इस बात की खबर जब रतिनाथ के पिता जयनाथ को मालूम हो जाती है तब वह फुफकारते हुए कहता है -

"साले की चमडी उधेड दूँगा। शूद्र है तो शूद्र की भाँति रहे।"[1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि ब्राहमणों की नजर में निम्न जाति के लोगों को धर्म पठन-पाठन का कोई अधिकार नहीं है।

जब कुल्ली राऊत और रतिनाथ तर-कुलवा गाँव जा रहे थे, तब रास्ते में एक तालाब में दोनों स्नान करते हैं। स्नान के बाद रतिनाथ तालाब के किनारे बैठकर जल्दी-जल्दी संध्या करता है यह देखकर कुल्ली राऊत उसके धर्माडम्बर पर व्यंग्य करते हुए कहता है -

"बबुआ, तुम तो नील माधव के वंशधर हो। फिर अपने कर्म-धर्म में इतनी हडबडी क्यों दिखाते हो ? कहीं कोई जान जाएगा तो शुभकरपुर की हँसी होगी।"[2]

कुल्ली राऊत अपनी धर्म आडम्बरता को भली भाँति जानता है, यह देखकर रतिनाथ मन ही मन उसके चातुर्य और व्यावहारिकता के प्रति मानवीय भाव से विचार करते हुए कहता है -

"अगर यह भी ब्राहमण के घर में पैदा हुआ होता, तो निश्चय ही इसके बदन पर फटे-पुराने कपडे न होते। हमारी जूठन खाकर, हमारी पहिरन पहनकर इसके बच्चे पलते हैं। उन्हें स्कूल और पाठशाला में जाने का अवसर नहीं मिलता। क्या मर्द, क्या औरत - इन लोगों का जीवन बडी जातवालों की मेहरबानी पर निर्भर है ..। "[3]

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ. ५०, वाणी प्रकाशन, नयी-दिल्ली-२, प्रथम संस्करण [वाणी] १९८५.

२. - वहीं - पृ. ५१.

३. - वहीं - पृ. ५१.

इस उध्दरण से उच्च जाति की आडमबरता तथा शोषण नीति भी स्पष्ट होती है। ब्राहमण लोग अपने स्वार्थ के लिए तथा अपने वर्चस्व को अबाधित रखने के लिए शूद्र लोगों को किस तरह गुलाम बनाये रखते हैं और किस तरह काम करवा लेते हैं। किन्तु उनका स्पर्श कैसे अपवित्र मानते हैं। इस बात का स्पष्ट पता चलता है।

इंद्रमणि उपध्याय की बेटी जनक किशोरी जो बिकौआ वर की पत्नी है। पति सहवास की अपनी अतृप्ति के कारण वह कुल्ली राउत के बडे बेटे से चोरी छिपे अपनी काम वासना पूर्ति कर लेती है जिससे उसके दोनों बच्चे देखने में कुल्ली राउत के बेटे जैसे ही रहे हैं।

इस उदाहरणसे यह स्पष्ट हो जाता है कि ब्राहमणों की छुआछूत केवल एक ढोंग मात्र है।

<u>बलचनमा -</u>

इस उपन्यास में छुआछूत की समस्या का भी वर्णन प्रस्तुत किया है। समस्तीपुर गाँव में जमींदारों के साथ पंडितों का भी दबाव रहा है। पंडित लोग छोटी-छोटी बातोंमें भी निम्न जाति के लोगों से घरेलु काम तो मुफ्त में करवा लेते हैं परंतु उनकी छाया तक छूना पाप समझते हैं।

इस गाँव में एक बूढा वैद्य है, जो सभी बीमार लोगों को दवा देता है, कभी-कभी बीमार व्यक्ति के घर जाकर उसकी जाँच भी करता है। परंतु यह महाशय निम्नजाति के यहाँ कभी नहीं जाता और यदि कोई निम्न जाति का व्यक्ति दवा माँगने उसके घर आता है तो उसे आँगन के बाहर ही खडा कर देता है। क्यों कि उसकी छाया से आँगन अपवित्र न हो जाय।

एक दिन बलचनमा अपनी बीमार दादी को दवा लाने के लिए इसी वैद्य के यहाँ जाता है। वैद्य महाशय दूर से ही उसे आँगन के बाहर खडा रहने के लिए सूचना देते हुए आने का प्रयोजन पुछ लेता है। बलचनमा अपनी दादी की बीमारी की हालत बता देता है। वह उसे घर के आँगन में लगे अनाज के ढेर को हौदेमें भरने के लिए संकेत करता है। बलचनमा को दोपहर तक यह काम करना पडता है। तब कहीं उसे दवा की तीन पुडियाँ मिलती है।

इसी प्रकार ग्रामीण पंडितों के मन में एक धारणा बैठी हुई है कि, मुसलिम लोग बकरी काटने का पाप कर्म करते हैं, मांस-मछली खाते हैं इसलिए उनके प्रति भी छुआछूत के नियमों को प्रचलित कर देते हैं। कोई व्यक्ति मुसलिम व्यक्ति का छुआ हुआ अन्न ग्रहण करे तो उसे बहिष्कृत किया जाता था।

इसका उदाहरण हमें बरहमपुरा गांधी आश्रम का मिलता है। वहाँ सभी जाती के काँग्रेसी आश्रमवासी एक साथ बैठकर खाना खाते थे। बलचनमा भी उनके साथ बैठकर खाना खाता था। वह मुसलमानों के साथ बैठकर, उनका छुआ हुआ खाना खाने में कोई दिक्कत नहीं मानता था। परंतु यदि बिरादरी का कोई उसे मुसलमानों के साथ बैठकर खाना खाते हुए देख लेगा तो इस खबर को गाँव - घर तक पहुँचा देगा और नाहक बखेडा खडा हो जाएगा इस भय से वह अपनी थाली उठाकर कमरे में जाता था और वहीं खाना खा लेता था।

क) <u>पारंपारिक अंधविश्वास, रीतिरीवाज और अंधश्रध्दा -</u>

प्राचीन काल से भारत में धर्म का एक विशिष्ट स्थान रहा है। "धर्म" का अर्थ है "धारण करना" "स्वीकार करना" अर्थात कर्तव्य पालन तथा आचार विचार संबंधी कुछ आदर्शों को और दार्शनिक सिध्दान्तों को मनुष्य स्वीकार कर लेता है। इसी कारण प्रत्येक धर्म संप्रदाय में आचार-विचार

एवं धर्म-कर्म संबंधी या उपासना संबंधी अलग अलग पध्दतियाँ है। परन्तु हमारी जटिलता तथा विदेशी आक्रमणों के कारण धर्म का दार्शनिक आधार खिसकता गया केवल आचार पक्ष या भाव पक्ष ही प्रबल होता गया। बाहयाचार और कर्मकांड का रूप बढता गया। पंडित और पुरोहितों ने तथा धर्मशास्त्रियों ने अपनी धन लोलुपता के कारण ऐसी अनेक रूढीवादी मान्यताओं और अंध विश्वासों को फैलाया जिससे अज्ञानी समाज उस लपेट में झुलसता रहा। धार्मिक जीवन के बाहयाडम्बर, देवी-देवताओं की पूजा, भूत-प्रेतों में विश्वास, पशुबलि, मनौतियाँ एवं प्रायश्चित आदिने धर्म को इतना पंगु और खोखला बना दिया कि, धर्म के ठेकेदार अपनी स्वार्थ सिध्दी के लिए सभी धार्मिक विकृतियों का पोषण करते रहे।

इसका चित्रण, नागार्जुने "रतिनाथ की चाची" बलचनमा, नयी पौध, "बाबा बटेसरनाथ""कुम्भीपाक"और "उग्रतारा" इन उपन्यासों में किया है।

रतिनाथ की चाची -

इस उपन्यास में उपन्यास-कारने विधवा समस्या के साथ-साथ समाज में प्रचलित परंपरा, रीतिरीवाज, अंधविश्वास और अंधश्रध्दा का भी चित्रण प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास में चित्रित ताराबाबा "साधु, जो उच्च कुल के ब्राहमण हैं परंतु सौतली माँ से अनबन हो जाने के कारण संसार के प्रति विरक्त होकर वेदाध्यायन करने चले जाते हैं। और शुंभकरपुर के बालु-हा पोखर के किनारे कुंटिया बनाकर रहने लगते हैं। वे फक्कड वृत्तिकेहोने के कारण साल-डेढ साल बाद विध्यांचल तथा पशुपतिनाथ की यात्रा करते है।

ये शुंभकरपुर के लोगों के लिए गुरु या शुभचिंतक हैं।

उनकी कुटी में हर आश्विन-मास में दशभुजा दुर्गा की पूजा होती है। इस पूजा में पूरा गाँव उन्हें सहायता देता है, परसौनी का बंशी मंडल दुर्गा देवी की सुंदर प्रतिमा बना देता है। तारा बाबा के बारे में अनेक किंवदन्तियाँ भी प्रचलित हो गयी हैं - जैसे कि एक दिन उनकी कुटी में रात के समय एक चोर चोरी करने आता है। चोरी करने बाद जब वह निकलने लगाता है तो वह निकल ही नहीं पाता। उसके पैरों में मानो किसीने साँकल बांध दिया हो जिससे वह सुबह तक वहीं बैठा रहता है। सुबह बाबा के सामने वह रोने लगता है तब उसे छुटकारा मिलता है। दूसरी एक किंवदन्तीवह है कि, छट्टू कुम्हार की सर्पदंश से मरी हुई गाय को एक जडी सुंधा देनेसे और पीठ उसके पीठ पर हाथ फेरते रहनेसे गाय जीवित हो जाती है। ऐसे साक्षात्कारी बाबा को शाम के वक्त थंडक युक्त भाग बनाने में दिलचस्पी है। एक दिन शाम को वे भांग बना रहे थे। तभी रतिनाथ का पिता जयनाथ आ जाता है। आते ही वह बाबा के पैर पकडता है। उसका दु:खी चेहरा देखकर बाबा उसे दु:ख का कारण पुछते हैं। तब जयनाथ अपनी विधवा भाभी गौरी के गर्भ गिराने की बात कहता है। गर्भपात के लिए "यंत्र" बनाकर माँगता है। इस "यंत्र" के लिए बाबा भोजपत्र की आवश्यकता बताते हैं -

"नहीं रे, नहीं। भोजपत्र का महात्म्य ही कुछ और होता है यों तो पीपल के पत्तेपर भी बीज मंत्र लिख देने से काम चल सकता है, परंतु यह तो खास मामला है न ? भगवती त्रिपुर सुंदरी का एक पंचाक्षर मंत्र है, वह अवांछित गर्भ गिराने में अनुपम है। समझते हो न ? "[१]

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.४१, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, पृ.सं. [वाणी] १९८५.

बाबा की आज्ञानुसार जयनाथ पंडित कालीचरण के घर जाकर उसकी विधवा पत्नी से भोजपत्र ले आता है और बाबा उस भोजपत्र पर गर्भ गिरानेवाला "यंत्र" बनाकर दूसरे दिन जयनाथ को देते हैं। यह "यंत्र" ना लिफाफे में भेजा जा सकता है, ना किसी शूद्र के व्दारा। क्यों कि उनकी यह धारणा थी कि अगर ऐसा करे तो उस यंत्र का प्रभाव नष्ट होगा।

इसलिए जयनाथ वह यंत्र विधवा गौरी के मायके रतिनाथके हाथ [तरकुलवा गाँव] भेज देता है। साथ में कुल्ली राउत भी जाता है। रास्ते में दर भंगा महाराज के एक पोखर पर वे दोनों स्नान करते हैं। स्वानके बाद जब रतिनाथ जल्दी-जल्दी संध्या करने लगता है तब कुल्ली राउत उसकी धर्माडम्बरता पर व्यंग्य करता है। इसपर रतिनाथ कहता है -

"अरे; यहाँ कौन देखता है ? देखना चलकर तरकुलवा में, घंटा-भर नाक न दबाए रहा, तो जो कहो।" [१]

रतिनाथ की अनास्था पर कुल्ली कुछ नहीं बोलता। रतिनाथ तरकुलवा में अपनी विधवा चाची के यहाँ तारा बाबा व्दारा दिया "यंत्र" पहुँचा देता है।

परंतु "यंत्र" पहुँचने के पहले विधवा गौरी का गर्भपात उस गाँव की बुधना चमार को पत्नी को पचीस रुपये देकर किया जाता है।

विधवा का अनैतिक संबंध से गर्भ रहना और गर्भपात करना शास्त्रकारों के अनुसार पाप कर्म माना जाता है। और इसपर प्रायश्चित करना अनिवार्य माना गया है। इसलिए विधवा गौरी के गर्भपात के ग्यारहवे दिन सत्यनारायण की पूजा और दान दक्षिणा देना चाहिए

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची-पृ. ५१, वाणी प्रकाशन नयी - दिल्ली-२, प्र.सं.[वाणी] १९८५.

ऐसा कुछ ब्राहमणों का मत था, तो कुछ ब्राहमणों के मतानुसार यह प्रायश्चित गंगा नदी के सिमरिया घाट पर होना चाहिए और उसके बाद सत्यनारायण की पूजा करनी चाहिए। इसपर विधवा गौरी की माँ का कहती है -

"बूँद - भर गंगा जल में उतना ही सामर्थ्य जितना कि सिमरिया घाट की गंगा में। यों कोई कहे तो हमारी बेटी पचीस बार गंगा नहाने को तैयार है। गौ-हत्या,ब्रहम-हत्या का पाप तो इसने किया नहीं, फिर महज मामूली बीमारी के लिए किसी को इतना दण्ड मैं कैसे दिलवाती ? "[१]

विधवा गौरी के गर्भपात का प्रायश्चित घरपर करने की तैयारी की जाती है। यह कार्य एक बूढे, पुरोहित नरेश ठाकुर व्दारा होता है। वह सत्यनारायण की मूर्ति सजाता है, शंकर बाबा नामके पंडित को पुजारी बनाया जाता है, उसके सामने विधवा गौरी को बिठाया जाता है तब संकल्प छोडते हुए वह गुनगुना ने लगता हैं कि -

"ॐ अद्य जेष्ठे मासे शुक्ले पक्षे त्रयोदश्यां तिथौ निवृत रोगाया अस्या: श्री गौरी देव्या: सर्वाऽऽ पति प्रशमनार्थ सांगसायुध सवाहन सपरिवार श्री सत्यनारायण पूजनमहं करिष्यामि .."[२]

इस पूजा के बाद विधवा गौरी पर गंगाजल, गोमुत्र छिडका जाता है और अमंत्रितों को प्रसाद दिया जाता है। पंडित और पुरोहित को भारी दक्षिणा भी दी जाती है।

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ. ५४, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, पृ.सं. १९८५.

२. - वहीं - पृ. ५४.

ऊपर लिखित बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि, प्रायश्चित विधि यह केवल स्वार्थ के लिए ही किया जाता है।

प्रायश्चित हो जाने के बाद उसी दिन गौरी अपने पतिगृह बैलगाडी से निकलती है। साथ में रतिनाथ और शंकरबाबा चलते है। परंतु शंकर बाबा बैलगाडी में बैठते नहीं, पैदल चलने लगते है यह देखाकर रतिनाथ उन्हें बैलगाडी में बैठने का आग्रह करता है तब वे कहते हैं -

"बच्चा, अब कोई इन बातों का विचार नहीं करता। बैल ठहरे शिवजी के वाहन। इनके चारों पैर धर्म के ही चार चरण है। इसलिए ब्राहमण न हल जोतते हैं, न गाडी चालाते हैं, चढना भी मना हैं। .. .. घोर कलियुग आया है, आज नहीं तो कल ब्राहमण भी हल जोतेगें। देख लेना अँग्रेजी पढे-लिखे ब्राहमण, सुना है, प्याज - लहसुन खाते हैं। मुर्गी का अंडा खाते हैं .."[१]

इस उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाते कि बैल के बार में उनके मन में कितनी गलत धारणाएँ थी।

अँग्रेजी शिक्षा के प्रति भी देहातों में गलत धारणा थी। अँग्रेजी शिक्षा लेना पाप समझते थे। अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त स्त्री से विवाह करना उससे भी महापाप मानते थे। शुंभकरपुर के ज्योतिषी जयदेव का पुत्र भवदेव, जो एम.एस्सी. था और कुछ अनुसंधान का कार्य रहा था। उसने पश्चिम बंगाल के दिनाजपुर में रहनेवाले मैथिली ब्राहमण परिवार की एक शिक्षित लडकी से विवाह कर लिया था। इसलिए शुंभकरपुर के सभी पुरोहित और पंडित उस पर बहिष्कार जाहिर करते हैं। पंडितों का कहना था कि, जिस

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ. ५५-५६, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, पृ.सं. [वाणी] १९८५.

बंगाली लडकी से भवदेव ने शादी की है, उस लडकी का बाप किरिस्तानी है और अण्डा खाता है, परिवार सहित गिरजा घर जाता है। ऐसे बाप की बेटी से विवाह करना अपने धर्म को भ्रष्ट करना है, इसलिए भवदेव के घर का अन्न-जल ग्रहण करना गौ-मांस खाने के बराबर हैं। जयदेव को प्रायश्चित करना अनिवार्य मानते है। परंतु जयदेव इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करता।

ब्रहम-हत्या पर भी प्रायश्चित का विधान धर्म शास्त्र में मौजुद है। परंतु इसका अर्थ पंडित पुरोहित अपने स्वार्थ के अनुसार लगाते हैं। शुंभकरपुर के जयनारायण का छोटा भाई लक्ष्मी नारायण की शादी जयनगर के एक जमींदार की बेटी से हो जाती है। शादी के कुछ दिनों बाद उसके ससुर के विरोध में उसके रैयतों ने आंदोलन किया। आंदोलन-कारियोंपर पुलिस व्दारा गोली चलाई गयी, उसमें दो किसान और एक ब्राहमण की हत्या हो जाती है। इस घटना को लेकर जयनगर के ब्राहमण लक्ष्मी नारायण के ससुर को "ब्रहम-हत्या" के पाप पर प्रायश्चित विधि करनेकी सूचना देते है। तदनुसार उनका प्रायश्चित विधि वहाँ के कर्मकांड केशारी वयोवृध्द पंडित बुच्चन पाठक की साक्षी में कमला नदी पर किया जाता है। इस विधि के लिए दस-बारह रुपये नकद दक्षिणा और दस कठ्ठा जमीन भेंट के रुपयें पंडित बुच्चन देना पडता है।

परंतु शुंभकरपुर के पंडित इस घटना को लेकर लक्ष्मी नाराणा पर यह आरोप लगाते हैं कि उसके ससुर ने यदि ब्रहमहत्या की है तो वह उसका जमाई होने के नाते वह भी महापापी है इस लिए उसे प्रायश्चित करना अनिवार्य है। इसपर जयनारायण पंडितों की बात का उपहास करते हुए कहता है -

"ब्राहमण मरा सही, मगर गोली तो सरकार बहादुर की लगी थी। इसमें लक्ष्मी नारायण के ससुर का क्या कसूर ?"[१]

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.क्र.९९, वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली - २, पृ.सं. [वाणी] १९८५.

इस प्रायश्चित विधि से यह विदित हो जाता है कि, यह केवल पंडित तथा पुरोहितों के स्वार्थ के लिए बनाई, गयी व्यवस्था मात्र है।

बलचनमा -

इस उपन्यास में जनसाधारण में प्रचलित अंधविश्वासों का भी वर्णन प्रस्तुत किया है।

इसमें चित्रित "सुखिया" छोटी मालकिन के मायके की रहनेवाली खवासीन है। वह छोटी मालकिन के साथ ही छोटे मालिक की हवेली में आयी है। सुखिया देखने में खूब सूरत, गोरी, छरहरी और मुँहफट नौकारानी है। जिससे मालिक से लेकर नौकरों तक सभी उसकी खिल्ली उडाते हैं। वह अविवाहिता है । हमेशा फिजूल बाते करती रहती है। वह हमेशा बलचनमा को अकेला देखाकर उसे चूमती है, कसकर पकड लेती है। बलचनमा उसे विरोध करता है, दुत्कारता रहता है।

वह कभी कभी जोर से चिखमारकर रोना शुरु कर देती है, आँखें फिराने लगती है, सिर के बाल बिखेर देती है, साडी खोलकर नंगी हो जाती है और जीभ बाहर निकालकर जोर-जोर से हाथ हिलाते हुए हुंकारने लगती है -

"ही..ही..ही..ही मैं काली हूँ, पोखार पर जो बौना पिपल है, उसी पर रहती हूँ खाऊँगी समूचा गाँव। बकरा दो, बकरा.." [१]

सुखिया का यह रूप देखकर छोटी मालकिन घबरा जाती है, अपनी नौकरानी को भूत के चंगुल से छुडाने के लिए देवी भगवती की प्रार्थना करते हुए मनौती बोलती है -

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. २०-२१, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण - १९८७.

"दुहाई भगवती की सुखिया का भूत भगा ले जाइए । दो कुँआरी लडकियों को आप की खातिर खीर-पूडी खिलाऊँगी।"[1]

मनौती बोलनेपर भी सुखिया का हुँकारना शांत नहीं हो जाता तब मालकिन बलचनमा को दामो ठाकुर को बुलाने भेजती है।

यह दामो ठाकुर ओझा तांत्रिक का काम करता है। झाड फूँक, पूजा-पाठ, टोना-टापर करना जानता है। वह हमेशा लाल धोती, लाल अंगोछा, माथेपर सिंदुर का लाल टिका लगाता है, उसने बहुत बडी चोटी रख ली है, उसके गले में हाथी के दातों से बनाये मणियों की माला, कान में रूद्राक्ष और नेवले के मुख जैसी मूठवाली बकुली की छडी लेकर जब चलने लगता है तब उसका भयावह रूप देखकर गली के बच्चे भी डरने लगते हैं।

दामो ठाकुर छोटी मालकिन के बुलाने पर हवेली में आ जाता है। उसे सम्मान के साथ एक कमरे में बिठाया जाता है। तब छोटी मालकिन सुखिया के कमरे में जाती है, उसकी कमर में साडी बाँध देती है। और नौकरों को बुलाकर उनकी सहायता से सुखिया को उठाकर तांत्रिक के सामने बिठाया जाता है। ठाकूर भूत उतारने के लिए चूहे के बिल की मिट्टी, पुराने बिनौले, कुश के तिनके, चार बूँद गंगाजल, और पीपल के सुखे पत्ते आदि मिलाकर भूत उतारना शुरु कर देता है -

"ओम काली काली महाकाली, इंद्र की बेटी, ब्रहमा की साली फू .. .."[2]

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. २१, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण - १९८७.

२. - वहीं - पृ. २१.

यह कहकर कुछ देरतक होंठ पटपटाता हुआ सुखिया की छाती पर, सिर पर, कंधो पर, कमर में फूँक मारने लगता है। और आँखों से इशारा करते हुए वहाँ उपस्थित सभी लोगों को बाहर जाने की सूचना देता है। सभी बाहर जाते ही नौकर किवाड बंद कर देता है।

बाद में थोडी देर तक अंदर से हुँ.. हुँ .. आवाज आने लगती है। धीरे-धीरे यह आवाज बंद हो जाती है। बहुत देर के बाद पसीनेसे भीगा हुआ दामो ठाकुर किवाड खोलकर बाहर आ जाता है। और जाते-जाते कहता है -

"नौकरानी का मिजाज ठीक कर दिया है, बडा जबरदस्त भूत था, मुश्किल से काबू में आया .."[१]

भूत उतारने पर सुखिया को थोडी देर तक अकेली छोडने की सूचना देकर दामो ठाकुर चला जाता है। इस सुखिया का यह हाल साल में एक-दो बार होता ही रहता है। जब दामो ठाकुर गाँव में मौजुद नहीं होता तब वह डेढ-दो दिन तक जोर-जोर से चिल्लाते हुए उछलती है, नंगी होकर कूदने लगती है, रोती-हँसती रहती है, सिर के बाल बिखेर देती है और हाथ हिलाने लगती है। इस हालत में उसपर काबू पाना कठिन हो जाता है। तब मालकिन उसे कमरें में बंद कर देती है। तब वह किवाड पर जोर जोर से पीटना शुरु कर देती है। यह देखकर मालकिन, हवेली में घोडे की निगरानी रखनेवाले अनंत बाबू को सुखिया के कमरे में छोडकर बाहर से किवाड बंद कर देती है। इसपर वह कहती है -

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. २३, किताब महल, इलाहाबाद-3, नवाँ संस्करण - १९८७.

"भूत या जिन्न अकसर बाँझ औरतों को ही पकडता है .. तमाशगीरों के सामने भूत पिशाच की ताकत चार गुनी बढ जाती है, यह अकेले में ही पस्त होते है .."[१]

सुखिया के कमरे में अनंत बाबू और सुखिया में संचारित भूत की कुश्ती शुरु हो जाती है, थोडी देर तक छटा-पट सुनाई देती है। बाद में अनंत बाबू भी पसीने से भीगकर बाहर आ जाता है। तब कहीं सुखिया शांत हो जाती है।

सुखिया का भूत चढना और दामो ठाकुर तथा अनंत बाबू के द्वारा एकांत में भूत उतारना और सुखिया का स्वस्थ्य हो जाना यह केवल एक ढकोसला मात्र है। वह केवल शारीरिक वासना पूर्ति के लिए ही यह करती है। जब वासना पूर्ति हो जाती है तब वह शांत हो जाती है।

धर्म के नामपर और भी कुछ अंध विश्वास फैलाने का प्रयास पंडित-पुरोहित करते हैं। विशेषत: निम्न जाति के व्यक्ति को शिक्षा देना पाप कर्म माना जाता है।

बलचनमा जब से बरहमपुर गांधी आश्रम में राधाबाबू के साथ रहने लगा तब वह उनकी और आश्रम वासियों की भी दिल लगाकर सेवा करता है। यह देखकर राधाबाबू उसे पढने की प्रेरणा देते हैं। स्वयं राधाबाबू उसे लिखना-पढना सीखाते हैं। बलचनमा भी दिल लगाकर पढने लगता है। एक दिन राधाबाबू की बहन उन्हें मिलने आती है तब राधाबाबू की पत्नी अपनी ननद को बलचनमा के पढाई की खबर सुनाती है। परंतु राधाबाबू की बहन को अपने भाई का यह कार्य पसंद नहीं आता इसलिए वह भाभी से कहती है -

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. २२, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण १९८७.

"ऐसा! मैं भाई जी को मनाकर दूँगी। नौकर-चाकर जितना ना समझ रहे, उतना अच्छा भाभी! हमारे अजिया ससुर का कहना था कि छोटी जातवालों को जो आखर ज्ञान देता है, उसका अपना तेज घटता है, और जो शूद्र को समूची पोथी पढा दे, उसके पित्तर स्वर्ग छोडकर नरक में रहने को मजबूर होते हैं। "[1]

इसपर राधा बाबू की पत्नी उसे कहती है कि, तुम तो स्वर्ग की बात कहती हो परंतु यहाँ यदि नौकर चाकर लिखने - पढने बैठेंगे तो बाकी सभी काम कौन करेगा।

इससे स्पष्ट होता है कि धर्म के नामपर निम्न जाति के लोगों को शिक्षा लेने से वंचित रखकर, उनके अज्ञान का फायदा उठाते हुए, शोषण करना धर्म मार्तंडों का उद्देश्य रहा है।

देहातों में धर्मशास्त्र के नामपर छोटी-छोटी बातों पर प्रायश्चित करने की प्रथा भी दिखाई देती है।

इस उपन्यास का नायक "बलचनमा" का बाप लालचंद बहुत दिनों तक ढाका में रहकर अपने बाल मुँछ कटवाकर जब गाँव आ जाता है। यह खबर बूढे मालिक को मिलते ही लालचंद को हवेली पर बुला लाते है। उसका साफ-सुधरा रूप देखकर उसे फटकारते हैं और गाँव के बबुअन झा पंडित को बुलाकर प्रायश्चित करवाने का प्रबंध कर देते हैं। लालचंद पंडितके साथ नदी किनारे जाता है। वहाँ पंडित लालचंद का मुंडन करवा लेता है। उससे दान-दक्षिणा भी लेता है। इसी-तरह बलचनमा भी एक बार मामा के आग्रहपर बाल कटवा लेता है तब उसे भी दूसरे दिन प्रायश्चित करना पडता है।

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. १००, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण - १९८७.

इस उपन्यास में चित्रित फुदन मिसर ब्राह्मण की पत्नी ने अपने खेत-खलीहन और गाय की निगरानी रखने के लिए छकौडी चाचा को काम पर रख लेती है। यह चाचा मन लगाकर अच्छी तरह काम करता रहता है। एक दिन सावन के महिने में ताडी पीकर बेहोष हो जाता है। उसी रात में गाय को एक साँप डस लेता है। साँप का जहर जब गाय के शरीर में फैलने लगता है तब वह गाय असहाय होकर जोर जोर से "रँभा-रँभा" की अवाज करते हुए छटपटाने लगती है फिर भी छकौडी चाचा नहीं उठता। परिणामत: सुबह तक गाय मर जाती है। गाय की इस मृत्यु को बबुअन पंडित गोवध सिध्द करता है। इसपर प्रायश्चित किए बिना छकौडी चाचा को उसकी बिरादरी में स्थान नहीं मिलेगा इसकी सुचना भी देता है। लेकिन प्रायश्चित के लिए उसके पास एक फूटी कौडी भी नहीं होती जिसके कारण वह घबरा कर बलचनमाके बापके पास जाता है और उसके पैर पकडकर रोने लगता है, सिर पटकने लगता है और गिडगिडाते हुए कहता है -

"लालचन, जो चाहे सो लिखवा लेना लेकिन "ना" मत करो, भीत से टकराकर कपार फोड लूँगा और मर जाऊँगा तेरे सामने। चलके इस पाप से मेरा उध्दार कर दे लालो!..[१]

उसकी सुनकर लालचंद भी पिघल जाता है और बाहर जाकर सौ रुपया उधार लाकर छकौडी के हाथ में रख देता है। दूसरे दिन प्रायश्चित विधि के लिए पंडित बबुअन झा को पहले पचास रुपया नकद देता है और बादमें उसके साथ गंगा किनारे प्रायश्चित के लिए जाता है। वहाँ पंडित छकौडी चाचा के छोटी के बाल कटवाकर बालू-गोबर खाने

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. १२६, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण - १९८७.

देता है और दान दक्षिणा समर्पण करने के लिए कहता है। उसके बाद पंडित किसी पोथी के पन्ने को होठों में ही गुनगुनाया करता है। अंत में घर जाकर सत्यनारायण की कथा सुनवाता है, तभी छकौडी के जाति और समाज के लोग उसके घर का प्रसाद ग्रहण करते हैं।

नयी पौध -

इस उपन्यास में उपन्यास की नायिका - "बिसेसरी" जो चौदह साल की है, जिसकी शादी साठ वर्षीय चतुरानन चौधरी से निश्चित की जाती है परंतु गाँव के नवजवान इस शादी को रोक देते हैं। इस अपमानित चतुरानन चौधरी अपने लोगों के व्दारा ऐसी अफवा फैलाता है कि उसने शादी के बाद बिसेसरी को त्याग दिया है। इसका परिणाम यह हो जाता है कि, खोंखा पंडित के अनेक प्रयत्न करने पर भी बिसेसरी की शादी कहीं भी नहीं हो पाती।

बिसेसरी के विवाह की चिन्ता खोंखा पंडित के पूरे परिवार हो जाती है। परिवार के सभी सदस्य हाथ जोडकर भगवान की प्रार्थना करने लगते हैं। पंडिताइन अपनी नातिन की शादी जल्दी तय हो जाने के लिए दुर्गामाता की तस्वीर के सामने आँचल फैलाकर, माथा झुकाते हुए दो बकरे बलि देने की प्रतिज्ञा करती है। पंडित का बडा बेटा गिरजानंदन अपनी भाँजी के विवाह तय हो जानेपर सत्यनारायण की पूजा करने का संकल्प करता है। तो रामेसरी अपनी बेटी का विवाह शीघ्र तय हो जाने के लिए बैद्यनाथ से मनौती माँगती है कि, वह स्वयं पैदल जाकर बैद्यनाथ को गंगाजल से नहलायेगी। स्वयं बिसेसरी भी अपना विवाह आनेवाले अगहन तक किसी बीस-बाइस साल के नवयुवक से हो जाने के लिए भगवान कृष्ण से मनौती माँगती हुई कहती है, कि कन्हैया के लिए चाँदी की बाँसुरी भेंट चढाऊँगी।

पंडिताइन, गिरजानंदन, रामेसरी और बिसेसरी इन सबकी यही धारणा रही है कि, विवाह आदि सभी काम मनौती से हो सकते है।

बाबा बटेसरनाथ -

"बाबा बटेसरनाथ" इस उपन्यास में उपन्यासकारने अंधश्रध्दा और अंधविश्वासका भी जिक्र किया है। इसमें उपन्यासकार ने तीन सौ वर्ष पुराने वटवृक्ष के मानवीकरण के व्दारा रूपउली गाँव की चार पीढियों की कहानी बता दी है।

जैकिसुन का परदादा अधिकालाल राउत परम शिव भक्त, वनस्पति प्रेमी और खेत खलिहन में लगाव रखनेवाले व्यक्ति था। उसके मन में बरगद का एक पौधा लगाने की तमन्ना थी। इसलिए रूपउली गाँव से दो कोस दूरीपर स्थित शिव मंदिर की दीवार की दरार में पनपनेवाला एक बरगद का पौधा उस मंदिर के जीर्णोध्दार के समय वहाँ के पुजारी की इजाजत से ले आता है। उस पौधे का रोपण वह रूपउली गाँव के तर्क पंचानन शास्त्री व्दारा विधिवत पूजा-अर्चा के साथ गाँव के बीचो-बीच कर देता है और उसे अपनी सन्तान की भाँति स्नेह से पालपोसकर बडा कर देता है, उसके पश्चात् जैकिसुन के दादा उस पेड की सेवा बडी लगनसे करता है। जिससे वह पेड बहुत बडा वटवृक्ष बन जाता है। इसके तले गाँव के सभी लोग बडे आदरसे आते रहते हैं, अपनी भाव-भावनाओंकी तथा विचारों की लेन-देन करते हुए जीवन सुकर बनाने का प्रयास करते हैं। रूपउली गाँव के सभी लोग इस वटवृक्ष को केवल "वृक्ष" ही नहीं बल्कि अपने घरके अनुभवी बुजुर्ग समझकर बडे आदर के साथ "बाबा बटेसरनाथ" कहने लगते हैं।

इस हर सोमवार और बुधवार के दिन प्रात: कालमें फेरा लगाने के लिए गाँव की महिलाएँ आती है, बडी श्रध्दा से पूजा करती है। साथ ही हरसाल जेठ महिने की अमावस को "वट पूजा" तिथि के दिन गाँव की सभी सधवा स्त्रियाँ भक्ति और श्रध्दा के साथ पूजा करते हुए फेर लगाती है और अपने मनोरथों को पूर्ण हो जाने के लिए दुवा माँगती है । जब हिजरी सन १२८० में अकाल पड जाता है। तब इस वटवृक्ष के तले रूपउली गाँव की सभी औरतोंने मिलकर पंडित और ब्राहमणों की सहायता से मिट्टी के ग्यारह लाख शिवलिंग बनाकर विधिवत पूजा करते हुए वर्षा के कुछ सामुहिक गीत गाती हैं। इतना ही नहीं रात के समय सभी औरतें एक-एक गुट बनाकर तालाब में मेंढक पकड लाते हैं और उन्हें ओखलियों में मूसलों से कुचलते हुए इंद्र देव की प्रार्थना गाती हैं। पंडित लोग वर्षा के लिए वटवृक्ष के तले "चण्डी पाठ" का पारायण करते हैं। तो साधक एक-एक मंत्र को लाखों बार जपते रहते हैं। गाँव के ग्वाला, अहिर, धानुक आदि जाति के लोगोंने भी "भुइयाँ महाराज" का पूजन करते हुए दस भेडे बलि चढाते हैं फिर भी वर्षा नहीं होती।

इस गाँवके जदू पाठक का एक भाई चक्रमणि पाठक जो वह वृक्ष के तले "ब्रहम" की स्थापना करना चाहता हैं परंतु बाद में वह किसी नेपाल राजा के फौज में सेनापति बन जाता है और कुछ दिनों बाद युध्द में काम आ गया। जिसके कारण उसकी इच्छा अधूरी रह जाती है। जिसके कारण लोग समझते है कि वह स्वयं ब्रहम बनकर इस पेड पर वास करने लगा है। एक दिन वह अपने भाईके स्वप्न में आकर साक्षात्कार देते हुए कहता है कि मेरी स्थापना इस वटवृक्ष पर कर दो, ध्वजा पहराओ। परंतु लोग लाज के भय से "बाबा बटेसरनाथ" पर उसको स्थापित करना उचित नहीं समजता परंतु जब गाँव में एक-दो स्थलों पर अचानक अग्निकांड शुरु हो जाता है। तब पुन:जदू पाठक के स्वप्न में उसका भाई चक्रपाणि उसे धमकता है -

"तीसरी बार जो आग उठेगी वह तेरे घर से उठेगी और समूची बस्ती को खाक कर डालेगी ; अग्निकांड के बाद महामारी को बुलाऊँगा मैं। समझ क्या रखा है तूने ? "[१]

इस भय के कारण जदू पाठक वटवृक्ष पर चक्रमणि पाठक-"ब्रह्म" के नाम से विधिवत ध्वजा लगाता है और वहाँ एक वेदी बनाकर उस पर सिंदुर लगा देता है और "ब्रह्म बाबा" की विधिवत स्थापना कर देता है। धीरे-धीरे लोग अपनी मनो कामना पूर्ति के लिए वहाँ मनौतियाँ बोलने लगते हैं। जब उनकी मनोकामनाएँ पूर्ण होने लगती है तब बडे आनंद से "ब्रह्मबाबा" की वेदी पर रेशम की झूलें सिरमौर के मण्डप, जरी गोटे की मालाएँ, पीतल - काँसे की घंटियाँ, झण्डे, धूप-दीप, फल-फूल, दूध, गंगा जल, बेल, तुलसी दल, मिठाइयाँ चढाने लगते है।

कभी कभी मनौती सिध्दी के आनंद में अनेक लोग एक साल में बीस - पचीस बकरियों की बलि चढाने लगते हैं। बकरा बलि चढाते समय पंडित बकरेके मालिकसे बकरे की और हाथियार की विधिवत पूजा करवा लेते थे। तब पंडित के कथनके अनुसार बकरे का मालिक बकरे के सामने हाथ जोडकर प्रार्थना करता था कि,

"यज्ञ के निमित्त पशुओं की सृष्ट की विधाता ने, यज्ञ के निमित्त ही उन्हें मार गिराया जाता है। इसी कारण मैं तुम्हे मरवाऊँगा, यज्ञ की हिंसा हिंसा नहीं हुआ करती" [२]

---

१. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ - ५६-५७, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२ चतुर्थ संस्करण - १९७८.

२. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ पृ. ५९, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, चतुर्थ संस्करण - १९७८.

इस प्रार्थना के द्दारा उस बकरे की बलि चढाने के लिए इजाजत ली जाती थी और जब तक वह बकरा "मैं--मैं--मैं.." की आवाज नहीं करता तब तक उसे काटा नहीं जाता था, क्यों कि वे लोग यह समजते थे कि उस बकरे की आवाज याने उसकी आत्मा की आवाज है जो इस लोक को छोड जाने की इजाजत माँग रहा है। बकरे की बलि देते समय सभी लोग वहाँ इकट्ठा हो जाते थे और आनंद के साथ बकरे का शरीर अपने घर ले जाते थे। इस पशु बलि प्रथा के हजारों वर्ष पूर्व "नरबलि" प्रथा भी मौजूद थी, इसके बारे में स्वयं बाबा बटेसरनाथ जैकिसुन को कहते हैं -

"एक वह भी युग था जब कि हमारे पूर्वज मनुष्य की ताजा अँतडियों की माला पहना करते थे ; एक वह भी युग था कि हमारी वेदियों पर कैदी राजाओं की आँखे निकालकर चढा दी जाती थी ; एक वह भी युग था कि ताजा कटी उँगलियों का हार पहनाकर वटवृक्ष का श्रृंगार किया जाता था ; नरमुण्ड और आदमी का लहू देवों और ब्रहमों के दबाव में आकर जाने कितनी बार हमारे पुरखों को स्वीकारना पडा है! .. मनुष्यों की बलि चाहनेवाले यक्ष-गंधर्व, देव-देवियों और ब्रहम अब बाहर नहीं रह गये - मोटी जल्दोंवाले पुराने पोथी की बारीक पंक्तियों के अन्दर आज वे नजर बन्द हैं।"[१]

जद्दू पाठक का बेटा मध्दू पाठक जिसकी आयु पचपन तक पहुँची है जिसकी शादी नहीं हुई है। इसलिए वह "ब्रहम बाबा" की बार-बार पूजा करता है, साल में पाँच बार बकरे की बलि चढाता है, फिर भी उसे किसी लडकी का बाप शादी के लिए पुछने नहीं आता। इसलिए वह अपने

---

१. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ पृ. ६०, ६१, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, चतुर्थ संस्करण - १९७८.

घरके खानदानी "ब्रहम-बाबा" पर शंकित होने लगता है। ज्योतिषी, साधु-सन्त, ओझा, औलिया के पास अपनी शादी के बीच आनेवाली दिक्कतों को जानने का प्रयत्न करता रहता है।

एक दिन मधुरू पाठक फूल परास-बाजार के करीब एक गाँव में रहनेवाले औघड बाबा के पास चला जाता है। जो डोम जाति का है। यह बचपन में कहीं भाग गया था और तीस साल के बाद एक नेपाली सुंदरी को लेकर अपनी मातृभूमि में लौट आया था। गाँव के बाहर नदी के किनारे फूस की कुटिया में वह अपने बिबी बच्चे के साथ रहने लगता है। उसने दाढी-मूछ बढाई है, मामुली जटाएँ और हाथ में चिमटा लेकर घुमता रहता है। भूत-प्रेत का उपद्रव मिटाने का, देव-देवी का उत्पात शांत करने का, ब्रहम-कर्ण-पिशाची-चुडैल आदि की खुरापतों को अपनी "कंकाली माई" के नाम और टोना-टापर से मिटाने में वह मशहूर हो गया है। यह कार्य संपन्न करने के लिए वह दान में काफी दक्षिणा, भैंट सौगात में बकरा, पाँच बोतल शराब और नेपाली गाँजा माँगता रहता है जब मधुरू पाठक अपनी कुकर्म कहानी उसे सुनाता है तब वह औघड बाबा कहता है -

"तुम्हारा बरहम भारी पाजी है। बरगद का सहारा उसे जब तक रहेगा तब तक तुम्हारी शादी नहीं होगी। कहो, तो चलकर मैं उसे कैद कर लाऊँ। "[१]

मधुरू पाठक उसकी सभी माँगे स्वीकार कर लेता है। उसे रूपउली के "ब्रहम बाबा" को हटाने के लिए ले आता है। यहाँ आने के बाद औघड बाबा पहले भंग रगडकर पीता है, उसपर चरस के कश लगाता

---

१. नागार्जुन - बाबा बटेसर नाथ - पृ. ६३, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, चतुर्थ संस्करण - १९७८.

है और बगल में झोली और हाथमें चिमटा लेकर "ब्रह्म बाबा" की वेदी पर पहुँचते ही "अलख निरंजन" का घोष करते हुए उस वेदी को फोड देता है, ब्रह्म बाबा की ध्वजा को उखाडकर फेंक देता है, अपनी खुरपीसे चबुतरा खोद डालता है और बाद में अपनी झोली से एक बडा किला निकालकर बरगद के पेड के सिने में दस बार धीरे-धीरे ठोंकता है और निकालता है। अंतमें ग्यारहवे बार जोर से किला ठोंकते हुए कहता है -

"चाकरपाइन पाठक! अब तुम इस कील की हिरासत में आ गये बाबू! चलो, अब मेरे साथ .. " [१]

इसके बाद औघड बाबा उस किले को मकरमपुर के नजदिक एक पुराने पीपल के सिने में ठोंकने के लिए ले जाता है। जाते जाते पाठक को वह बता देता है की अबजल्दि से शादी करो अन्यथा "ब्रह्म बाबा का फेरा फिर आ जायेगा। कुछ दिनों बाद मध्दु पाठक की एक लंगडी लडकी के साथ शादी हो जाती है।

कुम्भीपाक -

इस उपन्यास में अंधविश्वास का चित्रण भी मिलता है।

इसमें चित्रित कम्पाउडर की बीवी"निर्मला" को विवाह के बाद आठ-दस वर्ष तक कोई बालबच्चा नहीं हो जाता। जिससे वह दूसरों के बालबच्चों को देखकर मन ही मन विव्हल हो जाती है। जब पास पडोस की स्त्रियाँ उसे नाराज देखती है तब उसे किसी ज्योतिषी, औलिया या ओझा, साधु बाबा के पास जाने को सलाह देती है। एक दिन पडोसीन

---

१. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ - पृ. ६४, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, चतुर्थ संस्करण - १९७८.

निर्मला को एक खबर सुनाती हैं कि, पटना से छः- सात कोस पर पुनपुन नदी के किनारे संतो की एक टोली डेरा डालकर रही है। वहाँ हर सोमवार के दिन बहुत भीड रहती है। वहाँ के सन्त बाबा कुछ मंत्र पढकर एक भभूत चाटने के लिए देते हैं, जिससे बालबच्चा हो सकता है यदि तुम वहाँ जाओगी तो तुम्हारा भी काम हो जाएगा। परंतु निर्मला इस बात पर विश्वास नहीं करती। उसकी धारणा है कि, बहुत बार ढोंगी साधु ऐसे ढोंग रचाकर स्त्रियों को फँसाते है। इसलिए वह विभाकर की माँ को कहती है -

"ऐसी जगहों में कौनसे मंत्र पढे जाते है और कैसी भभूत चटाई जाती है, मुझे मालुम है, विभाकर की माँ। अभी सन्तान के यही सब करना होगा तो मैं टेढे-मेढे रास्तोंपर नहीं चलूँगी, सीधी सडक पकडूँगी। आप मेरा मतलब समझ गयी होंगी। इस तरह की बाते सुनना पसंद नही है .. "[१]

<u>उग्रतारा</u> -

इस उपन्यास में उपन्यासकारने अंधविश्वास तथा अंधश्रध्दा का भी चित्रण प्रस्तुत किया है।

इसमें चित्रित सिपाही भभिखन सिंह उगनी पर जबरदस्ती करते हुए उसके साथ विवाह कर लेता है। परिणाम स्वरूप उगनी भभिखन सिंह को उचित साथ नहीं देती, समय पर खाना नहीं खाती। क्यों कि वह अपने आप को अपने प्रेमी कामेश्वर को समर्पित मानती है, इसलिए वह भभिखन सिंह को प्रतिसाद नहीं देती। यह बात भभिखन को मालूम न होने के कारण वह यह समझता है कि उसे कुछ हुआ है इसलिए वह रतनपुर

---

१. नागार्जुन - कुम्भीपाक - पृ. ११९, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्रथम संस्करण [वाणी] - १९८५.

के हनुमान मंदिर में रहनेवाले साधु बाबा के पास जाता है। उनसे उपाय पुछता है तब बाबा कहते हैं कि, उगनी की ग्रहशांति करने के लिए "रामायण नवाह" पाठ और नवरात्रिमें "चण्डी पारायण" करना आवश्यक है। उनके कथनानुसार अभखिन सिंह पठन पाठन करता है फिर भी उगनी में कोई फर्क नहीं पडता इसलिए वह साधु बाबा को घर बुलाकर पत्नी के साथ होम-हवन करवाता है, पत्नी के हाथों से हवन के अग्निकुंड में पूर्णाहुति का समर्पण करवाता है। बाबा को दान-दक्षिणा भी देता है।

ड) जमींदारों की शोषण प्रवृत्ति और अत्याचार -

अंग्रेजों के अगमन के साथ जमींदारी प्रथा का प्रचलन हुआ। जिसके परिणाम स्वरूप किसानों का सर्वाधिक शोषण होता रहा। जमींदार अपने इलाके के सर्वेसर्वा होने के कारण से किसानों पर जोर जुल्म करना, उनसे बेगार लेना, उन्हें मारपीट करना आदि उनका जन्म सिध्द अधिकार माना गया था। वे जमींदारी के साथ साथ महाजनी भी करते हुए सूद पर सूद चढाकर किसानों की जमीन - जायदाद हडप लेते थे। आचारहीन तथा निरंकुश जमींदारों के उत्पीडन के शिकार बने किसानों को जीना दुभर हो गया था। जमींदारों ने पैसे के बलपर कलक्टर से लेकर पुलिस तक सभी सरकारी अधिकारियों का सहयोग प्राप्त करते हुए शोषण की अजस्त्र धारा को अबादित रखा था। यहाँ तक कि काँग्रेसी नेताओं को भी अपने अधीन कर चुके थे।

इसका चित्रण हमें "रतिनाथ की चाची" "बलचनमा" और "बाबा बटेसरनाथ" आदि उपन्यासों में मिलता है।

रतिनाथ की चाची -

"रतिनाथ की चाची" में चित्रित रायबहादुर दुर्गानंदन सिंह शुंभकरपुर गाँव के बहुत बडे जमींदार हैं। उनकी जमींदारी का कार्यक्षेत्र पाँच कोस तक फैला हुआ है। जमीन कसनेवाले किसानों से हरसाल उन्हें तीन लाख रुपयों की लगान मिलती रहती है। इतना होते हुए भी वे डेढ रुपया सैकडा प्रतिमास सूद पर कर्ज भी देते हैं। कर्ज देते समय कर्जदार के अंगूठे के निशान कोरे कागज पर लेते हैं। यदि कर्जदार कर्ज की रकम और सूद समयपर नहीं देता तो उसपर चक्रवृध्दि सूद के हिसाब से कर्ज की रकम तय करके उसकी जमीन और जायदाद हडप करते हैं।

१९३७ में जब कॉंग्रेस के प्रांतीय शासन बनने लगे तब बिहार में भी प्रांतीय शासन के लिए चुनाव हो गया। इस चुनाव में कॉंग्रेस नेताओंने सामान्य जनता से अनेक वादे किये। जब मंत्री मंडल स्थापित हो गया तब मंत्रियों ने अपने वादे निभाने के लिए पहले जमींदारी उन्मूलन की बात उठाई तब बिहार प्रांत के सभी जमींदारोंने नेताओं को धमकाया -

"आप का खादी का कुर्ता पहले हम अपने खून से तर कर देंगे, उसके बाद जाकर जमींदारी प्रथा उठा दीजिएगा।"[१]

इसका परिणाम यह हो गया कि कॉंग्रेस के नेता जमींदारों के बहकावे में आ गये। उन्होंने किसानों के पक्ष में बोलना बंद कर दिया। इसलिए किसान सभा के नेताओं ने कॉंग्रेस के विरुध्द आंदोलन शुरु किया।

इस आंदोलन की हवा रायबहादुर दुर्गानंदन सिंह की जमींदारी में बहने लगी। उसकी सूदखोरी और जमींदारी से पूरा इलाका तंग आ गया

---

१. नागार्जुन - रतिनाथ की चाची - पृ.८४, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, प्र.सं. [वाणी] - १९८५.

था। इसलिए परसौनी के रमापीत झा, जो दुर्गानंदन का कर्जदार था, परंतु जिला किसान सभा का प्रमुख होने के कारण किसानों को जागृत करते हुए उनकी किसान सभा स्थापित कर दी और दुर्गानंदन के खिलाफ जमीन की लगान कम करने के लिए आंदोलन शुरु किया। उसके खिलाफ नारे लगाते हुए जुलूस निकलने लगे। यह देखकर दुर्गानंदन ने अपनी चालाकी दूसरे तरीके से शुरु की। पुलिसवालों को बुलाकर आंदोलन कारी किसानों पर लाठी मार किया और उन्हें जेल बंद कर दिया। किसान सभा का नेता रमापति झा का बारह सौ रूपयों कर्ज माफ किया और आंदोलन वापस लेने के लिये उसे चौदह बीघा जमीन भेंट कर दी। शुभंकरपुर के जो ब्राहमण किसानों के पक्ष में थे, उन्हें भी दो-दो बीघा जमीन भेंट कर दी जिसके, कारण उन्होंने किसानों का साथ छोड दिया बाकी बची हुई जमीन उसने दूसरे एक छोटे जमींदार को बेच दी। परिणाम स्वरूप किसान आंदोलन शिथील हो गया परंतु किसानों पर अदालत में मुकदमें शुरु हो गये। अवसरवादी नेताओं के चौपट हो जाने के कारण किसान दिशाहीन हो गए। मुकदमें चलाते-चलाते उन्हें दो वक्त का खाना मिलना भी मुश्किल हो गया। आर्थिक अभाव बढता गया। घर की टूटी-फूटी जयदाद को बेचने लगे। इन आंदोलनकारी किसानों की बूरी हालत देखकर शुभंकरपुर के ताराचरण नाम के साम्यवादी नवयुवक ने नये जमींदार और आंदोलन-कारी किसानों में समझौता किया और ग्यारह मन प्रति बीघा लगान पर किसानों को कसने के लिए जमीन दे दी।

बलचनमा - [१९५२]

जमींदार लोग निर्धन और गरीब लोगों की असहायता का फायदा कैसा उठाते हैं ? उनसे अल्प मजदूरी पर अधिक से अधिक काम कैसे करवाते है ? साथ ही सूद का व्यवहार किस तरह करते है ? उधार देने में झूठमूठ का व्यवहार किस तरह करते हैं ? और गरिबों की जमीन-जायदाद

को कैसे हडप कर लेते हैं ? इस कार्य में जमींदारों की स्त्रियाँ भी कैसे अग्रसर रहती हैं ? इसका यथार्थ चित्रण "बलचनमा" इस उपन्यास में हमें मिलता है।

इस उपन्यास के छोटे मालिक की पत्नी गुणवन्ता, जो "छोटी मालकिन" कहलायी जाती है, शोषक और अत्याचारी स्वभाव की है। बलचनमा, कल्लेर, छीतन, अनंत बाबू, बलचनमा की माँ आदि से अपना काम करवाने के लिए छोटी यह हमेशा गालियों की बौछार करती रहती है।

इसके घर में खानेवालों की संख्या कम है जिससे हजार मन तक अनाज की ठेलियाँ लगी रहती हैं। यह बडी चालाक नारी है, भादों-आसिन में अपने बखार खोल देती है और चढे दाम पर अधिक से अधिक अनाज बेच देती है। इन दिनों में सामान्य लोगोंके पास अनाज की कमी रहती थी यह जानकर यह अपना डेढ-दो सौ मन अनाज गरजमंद खेतीहारों को सवाये दाम की शर्तपर देती है। अनाज देते समय तराजू में तोलने के लिए जिस सफेद पत्थर का [बटखरा] उपयोग करती है, वहीं सफेद पत्थर [बटखरा] अनाज वापस लेते समय इस्तेमाल नहीं करती थी बल्कि दूसरे भारी पत्थर [बटखरा] का उपयोग करते हुए जादा अनाज प्राप्त करती थी। उसकी यह चालाकी यदि अनाज वापस देनेवाले के ध्यान में आती, और यदि वह अनुनय के साथ कुछ बोलता तो इसे अपने पर लगाया आरोप समझकर छोटी झुँझला उठती और गालियाँ श्राप सुनाने लगती।

एक बार गाँव के फुदन मिसर ब्राहमण की विधवा पत्नीने छोटी मालकिन से छ. मन अनाज सवाये दाम पर वापस देने की शर्त से लिया था। जब पूस महिने में वह साढे-सात मन आनाज नाप-तोलकर वापस देनी आती तब वह उस आनाज को तोलने का काम जुगल कामत पर सौंप देती है। यह जुगल कामत भी कभी उसके खेत पर, तो कभी घर में काम

करता है। निर्वाह के लिए पैसों की जरुरत पडती है, तब उससे कर्ज भी लेता है, इसलिए वह मालकिन के बुलाने पर दौडकर आता रहता है।

जब जुगल कामत अनाज तौलने बैठता है तब उसकी तरह ही तराज़ू में भारी पत्थर [बटखरा] रखता है। यह देखकर हुड्डी हिलाते हुए विधवा ब्राहमणी कहने लगी –

"ऊँहु! यह नहीं है, वह बटखरा जिससे तौलकर मिला था .. .. ऊँहु .. "[१]

उसका विरोध देखते ही छोटी मालकिन गरजकर कहने लगती है –

"हैं ऽ ऽ! सच बघारने आई है .... देखो तो कामत ... जब पेट जलने लगता है तो आ-आकर नाक रगडती है, ईसर .. परमेश्वर, अनुपुर्ना .. लक्ष्मी जाने क्या क्या बनाकर पैर पैकडती है! .. मौके पर न दो धान तो समूचे गाँव को बरम वध [ब्रहमवध] लगेगा, दो तो लौटते समय ..! सँइयाँडाही, कहती है कि बटखरा बदला हुआ है! .. दुहाई गंगा मइया की! छटाँक – आधा-छँटाक धान के लिए जो मैं ने बटखरा बदला हो तो मेरा सत्यानास हो, नहीं तो झूठ-मूठ का कलंक लगाने-वाली इस रँाड की माँग अगले जनम में भी खाली-की-खाली रहे .."[२]

छोटी मालकिन की श्रापवाणी सुनकर वह बेचारी ब्राहमणी चुपचाप खडी रह जाती हैं और मन ही मन सोचने लगती है कि हरसाल जेठ -आसाढ में इसी के पास आना पडता है, विपति में इसी की शरण

---

१. नागार्जुन – बलचनमा – पृ. १७, किताब महल, इलाहाबाद-३ नवाँ संस्करण – १९८७.

२. – वहीं – पृ. १७ – १८.

लेनी पडती है, अगर वह थोडा जादा अनाज लेती है तो लेने दो। जब अनाज तौलने का काम समाप्त हो जाता है तब सात मन में दो पसेरी अनाज कम पड जाता है। यह देखकर बेचारी विधवा ब्राहमणी तिलमिलाती हुई घर जाती है और एक-और टोकरी भरकर लाती है, और साढे सात मन का हिसाब पूरा कर देती है। तब उसकी टोकरी में थोडासा अनाज बच जाता है, उसे वापस ले जाने का संकेत जुगल कर देता है। यह देखकर मालकिन जुगल को टोकते हुए कहती है -

"अरे, ले कहॉं जायेगी ? पाव-अधपाव भी क्या कोई चीज है। जाओ, यह भी बखार में डाल आओ। हमारे यहॉं पडा रहेगा तो समय पर इनके ही काम आयेगा, नहीं तो फाजिल अनाज ये लोग छींट-छॉंट डालते हैं। "[1]

मालकिन का यह स्वार्थ देखकर उस विधवा ब्राहमणी ने गुस्से से टोकरी उलटकर झटक देती है और झटके से जाती है, जाते-जाते धनिक लोगों की स्वार्थ भावना पर व्यंग्य कसते हुए कहती है -

"हे भगवान! इनका पेट है कि अगम कुँआ! इतना धन, इतनी सम्पदा! फिर भी संतोख नही ..! "[2]

छोटी मालकिन अपने स्वार्थ के सामने किसी की गिनती ही नहीं करती। वह पुरुषों को भी उतने ही चालाकी से फँसाती है और डॉंट-फटकार भी सुनाती है, और गालियॉं देने में भी हिचकती नहीं।

ऐसे ही एक दिन वसंत पंचमी के दिन शाम के वक्त गॉंव का करीम बख्श अपने बेटे के साथ दो टोकरियों में तीन मन दो सेर अनाज नापकर वापस करने आता है। तब खुद मालकिन तोलने बैठती है। इस

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. १८, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवॉं संस्करण - १९८७.

२. ---- वहीं ---- पृ. १८

तुलाई में भी वही बडा पत्थर [बटखरा] रखकर अनाज तोलने लगती है तब करीम बख्श ने लाया हुआ अनाज तीन मन में एक सर कम पड जाता है। यह देखाकर करीम बख्श अनुनय के साथ मालकिन से कहता है -

"सरकार, हम तो दो सेर ज्यादा ही लाये थे, घट कैसे गया ?"[1]

करीम बख्श की राय सुनते ही छोटी मालकिन तुनककर अपना दाहिना हाथ चमकाती हुई उसपर गुर्राकर गालियाँ देने लगती है -

"सुगर खौआ, लाज-शरम तुझे छू तक न गई, लेकिन मुझे तो भगवान का डर है ... वही बटखरा, वही तराजू। वही तू और वहीं मैं ..."[2]

यह सुनकर करीम बख्श कुछ न कहते हुए तिलमिलाता रह जाता है।

इस तरह अनेक प्रकारों से छोटी मालकिन धन जोडने का काम करती रहती है। काम करनेवाले मजदूरों को भी मजदूरी के रूप में कीडों से भरा या कुडा करकट से युक्त या धुन लगा हुआ अनाज कच्ची तोल में देती है तो कभी मजदूरों को पैसे देते समय पैसों की गिनती में हेराफेरी करती है। यह बात मजदूरों के ध्यान में आनेपर भी कुछ नहीं बोल पाते।

मालकिन का भाई भी गरीब लोगों को चुसने में तरबेज हैं। उसे खेती की उपज के अलवा हरसाल बीस हजार सूद के रूप में मिलते हैं। वह मधुबनी गाँव के दुसाध, चमार, खतबे, पासी, धनिया, जुल्हा तथा उसकी खेतीपर काम करनेवाले मजदूर आदि लोगों को मामूली-सी रकम सूद पर देता है। जब कभी रकम वसूल नहीं हो पाती तो वह उन गरीब लोगों की

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ.१८, किताब महल, इलाहाबाद-3, नवाँ संस्करण - १९८७.

२. --- वहीं --- पृ.१८.

जमीन - जायदाद नीलाम कर देता है और पैसे वसूल करता है। छोटी मालकिन के इस भाई के संबंध में बलचनमा कहता है -

"ठीक वैसे ही जैसे कि हमारे मँजले मालिक। सौ कसाई का एक कसाई, न लडके का मोह न लडकी का, न भाई का मोह न बहिन का, न बाप का मोह न माया का ? हाय रुपया, हाय रुपया! जब देखो तब रुपया ... अदालत उनकी, हाकिम उनका, थाना दारोगा उनका, पुलिस उनकी, गरिबों के लिए सिवाय लात-जूता के और है ही क्या ? "[१]

बाबा बटेसरनाथ -

इस उपन्यास में वटवृक्ष के माध्यम से पीढी-दर-पीढी जमींदारों के द्वारा निर्धन लोगों पर किये गये अत्याचारों तथा शोषण का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

इसमें चित्रित राजा बहादुर रामदत्त सिंह रूपउली इलाके के बहुत बडे जमींदार हैं। और महाजन भी हैं। ये इलाके सर्व-सर्वा रहे हैं। अपनी तानाशाही और जोर-दबाव पर रैयतोंसे बेठ-बेगार लेते रहते हैं। अपनी लगान की रकम या कर्ज रकम लैठत के द्वारा वसूल करते हैं।

इसी गाँव में शत्रुमर्दन राय नाम का एक मेहनती किसान है, जो अपनी ईमानदारी और पैनी सुझबुझ के कारण गाँव का मुखिया माना जाता है। उसके बाप ने राजाबहादुर रामदत्त सिंह से तीस रुपये सूदपर उधार लिए थे। कर्ज और सूद समय पर न लौटाने के कारण कर्ज की रकम सूद-दर-सूद चढकर चालीस तक पहुँच जाती है। शत्रुमर्दन इसे लौटाने में असमर्थ रह जाता है।

---

१. नागार्जुन - बलचनमा - पृ. ३९,४०, किताब महल, इलाहाबाद-३, नवाँ संस्करण - १९८७.

इस गाँव के पंडित चंद्रमणि का छोटा भाई बलिभद्दर, जो अपने नाना और भाई के बल पर गाँव में उडदंग मचाता है। कभी गाँव की बहु बेटियों को छेडता है, कभी तालाब का पानी छोड देता है, कभी किसी के भैंस या बैल को लापता कर देता है, तो कभी किसी के खिलाफ झूठ-मूठ की बाते कहकर जमींदार के कान भर देता है। गाँव की पंचायत बैठती है। गाँव के मुखिया के नाते शत्रुमर्दनराय बलिभद्दर को दो रुपये जुर्माना कर देता है तब बाकी पंच दुविधा में पड जाते हैं, वे जानते हैं कि बलिभद्दर के खिलाफ कुछ बोलना, आग से खेलना है। शत्रुमर्दन राय के निर्णय का नतीजा यह हो जाता है कि बलिभद्दर जमींदार रामदत्त सिंह के पास शत्रुमर्दन राय के खिलाफ शिकायत करता है, उनके कान भर देता है।

एक दिन सुबह जमींदार का भोजपुरी लठैत सिपाही शत्रुमर्दन के घर पहुँचता है। उसे देखकर शत्रुमर्दन राय बलिभद्दर के कुकर्म को समझ लेता है। फिर भी सिपाही को डेढ सेर चावल, पावभर दाल और एक अधन्नी देकर उसे विदा कर देता है। उस दिन शत्रुमर्दन राय पूरे गाँव में चालीस रुपये उधार माँगने के लिए घूमता रहता है, परंतु उसे पैसे नहीं मिल पाते।

दूसरे दिन सुबह वह अपने आपको धीरज बाँधते हुए राजा बहादुर के दरबार में जाकर उनके सामने हाथ जोडकर गिडगिडाते हुए कहता है -

"हुजूर! गरीब नेवाज! उतनी रकम के बदले जमीन कबाला करा लीजिए! दुहाई सरकार की! या फिर दो महिने की मुहलत मिले। .."[१]

---

१. नागार्जुन - बाबा बटेसरनाथ - पृ.४१, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२, चतुर्थ संस्करण - १९७८.

इसपर राजाबहादुर का मुन्शी कह देता है कि उसे इसके बहुत बार मुहलत दी जा चुकी है। यह सुनते ही राजाबहादुर शत्रुमर्दन को आँगन में ले जाने का हुकम देते हैं। वहाँ उसके हाथ सिर पर बाँध दिये जाते हैं, और दो ईंटोंपर पैर फैलाते हुए खडा कर दिया जाता है। उसी समय एक लठैत हाथ में कोडा लेकर आता है तो दूसरा लठैत मुह-बंद हँडी ले आता है।

जमींदार राजाबहादुर का इशारा पाकर उस लठैत ने मुह-बंद हँडी खोलकर उसमें से लाल चीटों का घोंसला एक डोरी के सहारे उठाकर शत्रुमर्दन के सिरपर रखकर डोरी पकडे खडा रहता है। लाल चींटे शत्रुमर्दन के आँख, गाल, नाक, कान तथा गर्दन को डसने लगते हैं, धीरे-धीरे सारे बदन पर फैल जाते हैं। शत्रुमर्दन असहाय होकर चींटे झटकने की, कोशिश करता है परंतु उपर से कोडे बरसाये जाते थे। कोडों की जलन और चींटोंकी चुभन से वह इतना व्याकुल बन जाता है कि, अखिर बेहोष हो जाता है। यह तमाशा देखनेके लिए बलिभद्दर भी जमींदार के साथ खडा था, उसकी अपेक्षा थी कि शत्रुमर्दन राय माफी माँगेगा। परंतु वह राजपूर होने के कारण हार नहीं मानता।

ब्रिटीश काल में जमींदारों ने अपने अत्याचारों का तरीका बदल दिया था। रूपउली गाँव के टुनाई पाठक और जयनारायण, जो छोटे जमींदार हैं, वे राजाबहादुर रामदत्त सिंह के वारिस से रूपउली गाँव का पोखर और वटवृक्ष के आस-पास की चरवाही जमीन कम दाम पर खरीद लेते है। इस जमीन पर कब्जा पाने के लिए प्रयत्न करते हैं। परंतु गाँवके नवजवान जीवनाथ, दयानाथ, जैकिसुन आदि गाँव की सामुहिक उपयोग की जमीन और पोखर को आबाद रखना चाहते हैं। इसलिए जमींदारों को

विरोध करते हैं। यह देखकर टुनाई पाठक और जयनारायन पुलिस थाने में उनके खिलाफ शिकायत कर देते हैं। पुलिस को भोजन खिलाकर और ऊपर से दो सौ रुपये रिश्वत देकर गाँव में विरोध करनेवाले नवजवानों पर लाठी चलाने के लिए कहते हैं। जिससे पुलिस जैकिसुन, जयनाथ, दयानाथ आदि पर लाठी चलाती हैं। उन्हें जेल में बंद कर दिया जाता है।

कुछ दिनों बाद जेल से रिहा होते ही नवजवान इस इलाके के एम. एल. ए. उग्रमोहनदास, जो काँग्रेस के नेता है, उनके पास जमींदारों के विरोध में शिकायत करते हैं परंतु उनसे भी न्याय नहीं मिलता तब वे किसान सभा और नवजवान संघ के जिला प्रमुख बाबू श्यामसुंदर सिंह की सहायता से गाँव में किसान सभा का निर्माण करते हुए जमींदारों के विरोध में आंदोलन शुरु कर देते हैं।